JANUARY to MARCH 2008
YEAR 5th : ISSUE 1st

जनवरी से मार्च 2008
वर्ष पंचम : अंक प्रथम

GYAN PRABHA

(Quarterly)

ज्ञान प्रभा

(त्रैमासिक) 8

सम्पादक मण्डल

सुरेश चन्द्र-प्रबन्ध सम्पादक
डॉ॰ धर्मवीर सेठी-सम्पादक

Editorial Board

Suresh Chandra-Managing Editor
Dr. Dharam Vir Sethi-Editor

मूल्य : 30/- रुपये

वार्षिक मूल्य 100/- रुपये

भारत विकास परिषद् प्रकाशन

इस अंक में...

1.	अपनी बात	ध.व.स	3
2.	भारत विकास परिषद् क्या है?	❑ डॉ॰ प्रकाशवती शर्मा	4
3.	राष्ट्रदेवो भव: एक सिंहावलोकन	❑ देव नारायण भारद्वाज	8
4.	ग्रामीण बैंक: सपना अब अपना है	❑ ईक्षिता	13
5.	माईक्रो क्रेडिट: कांटो भरा सुहाना सफ़र	❑ उमा शंकर मिश्र	16
6.	विशेष आर्थिक ज़ोन: संकल्प एवं समस्यायें	❑ डॉ॰ के. एल. गुप्ता	21
7.	शिक्षकों को आदर्श बनना चाहिए	❑ डा. अब्दुल कलाम	26
8.	चेतना के द्वारपाल हैं प्रश्न	❑ रमेश देव	30
9.	मन की खुराक है हँसी	❑ लाफ्टर मास्टर जितेन कोही	35
10.	गरीबों की सवारी-गरीबों का सहारा-रिक्शा	❑ राजेन्द्र कुमार	38
11.	राष्ट्र जीवन की विसंगतियाँ	❑ विष्णु प्रकाश पांडेय	43
12.	सैकेंड सेक्स का बायोडाटा	❑ अंजु दुआ जैमिनी	46
13.	Democracy Mistaken For Licence	❑ Kuldeep Nayar	50
14.	The Meaning Of Tirtha		52
15.	Are You Jealous?	❑ Dr. Anjanee	57
16.	Stammering is Curable	❑ Dr. Satyendra Shrivastava	59
17.	Perfection is not always good	❑ Suresh Chandra	63
18.	Return of the Native		70
19.	The Global Guru Sri Sri Ravishankar and His Art of Living		72
20.	River Yamuna : Origin, Religious Importance, Water Pollution & Control Measures	❑ Dr. R.D. Gupta	75
21.	Eleven Inspiring Qualities of Leadership		82
22.	Love Dwelleth in Birds Too	❑ C.D. Verma	83
23.	पाठकनामा		86

अपनी बात

ज्ञान प्रभा की आभा की आठवीं किरण लेकर हम आपके समक्ष उपस्थित हैं। वर्ष 2008 के जनवरी माह में प्रकाशित इस अंक से पत्रिका में कुछ नये आयाम जोड़े गये हैं। जैसा कि पूर्व में ही घोषित किया गया था अब यह पत्रिका अर्द्धवार्षिक रूप से प्रकाशित न होकर त्रैमासिक रूप से आपके समक्ष प्रस्तुत हुआ करेगी। अर्द्धवार्षिक पत्रिकाओं का अन्तराल बहुत अधिक रहता है एवं जब तक नया अंक आता है पिछला अंक विस्मृत जैसा हो जाता है। परिणाम स्वरूप तारतम्य टूट जाता है। आशा है अब ऐसा नहीं होगा।

इस अंक से पाठकों के पत्रों का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया गया है। हम जो कुछ प्रकाशित कर रहे हैं या नहीं इसका ज्ञान संपादक मंडल को होना आवश्यक है। रचनात्मक आलोचनाओं से परिपूर्ण पत्र हमें आगे भी मिलते रहेंगे ऐसी आशा की जा सकती है।

ज्ञान प्रभा के लिये लेखों का चयन करते समय हम उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित करते हैं। कुछ लेख ऐसे होते हैं जो समाज एवं देश के समक्ष उपस्थित ज्वलंत समस्याओं को स्पर्श करते हैं एवं संतुलित दृष्टिकोण अपनाते हुए उन पर अपनी बेबाक राय प्रकट करते हैं एवं उनका हल ढूंढते हैं। इन लेखों का सामयिक महत्व होता है। कुछ लेख शाश्वत् एवं सार्वभौमिक विषयों पर होते हैं जो कभी भी महत्वहीन नहीं होते। कुछ हल्के फुलके मनोरंजक लेख भी होते हैं।

विशेष आर्थिक क्षेत्र-सेज़ (SEZ)माइक्रो फाइनेन्सिंग एवं ग्रामीण बैंकों पर लेख प्रथम श्रेणी के हैं। नन्दी ग्राम एवं सिंगूर की घटनाओं तथा बंगला देश के बैकर एवं अर्थशास्त्री मुहम्मद यूनुस को मिले नोबेल पुरस्कार ने इन समस्याओं को नये आयाम दिये हैं। साथ ही ज्ञान प्रभा ने समाज के निम्न स्तर पर जीवन व्यतीत कर रहे तबके को भी नहीं भुलाया है अत: रिक्शा वालों की समस्याओं पर गहराई से विचार किया गया है।

राष्ट्रदेवो भव, महिलाओं की समस्याओं पर चुभती हुई शैली वाला लेख, Perfection Is Not Always Good, Qualities of Leadership, Are you Jealous इत्यादि सदैव महत्व रखने वाले विचारों से परिपूर्ण रचनाएँ हैं। हंसने गुदगुदाने वाले विचार एवं कोमलकांत पदावली से युक्त किन्तु ओजस्वी कविता भी इस अंक के भाग हैं।

ज्ञान प्रभा भारत विकास परिषद् का एक प्रकाशन है। अत: परिषद् के विषय में भी इसमें कुछ दिया जाये यह स्वाभाविक है। 'भारत विकास परिषद् क्या है' इस लेख में विदुषी लेखिका ने विकास शब्द की सर्वथा नवीन एवं अद्भुत व्याख्या की है। यह लेख परिषद् के प्रत्येक सदस्य के लिये पठनीय है।

यह अंक नव वर्ष के प्रारम्भ में पाठकों के हाथों में पहुंचेगा। परिषद् परिवार नव संवत्सर को नव वर्ष के रूप में मनाता है किन्तु पहली जनवरी भी विश्व के अनेक देशों में नव वर्ष के रूप में मनाई जाती है।

अत: वैश्वीकरण के इस युग में समस्त पाठकों को नव वर्ष की शुभ कामनाएँ एवं बधाई। ❍

भारत विकास परिषद् क्या है?

❑ डॉ॰ प्रकाशवती शर्मा

भारत विकास परिषद् क्या है? अक्सर इस प्रश्न का उत्तर देते समय कि मैं आजकल क्या कर रही हूँ, मुझे इस प्रश्न से भी रूबरू होना पड़ता है। और उत्तर में यह कहना कि भारत विकास परिषद् एक गैर सरकारी संस्था (N.G.O) है, परिषद् के बारे में कोई सार्थक उत्तर प्रतीत नहीं होता। कम से कम मुझे। प्रश्न पूछने वाला भी शायद इस उत्तर से संतुष्ट नहीं होता। तो भी कुछ और जिज्ञासा उसके मन में उस उत्तर के बाद उठती दिखाई नहीं देती। किन्तु मुझ में अवश्य यह एक छटपटाहट है, कुछ और कहने की अकुलाहट छोड़ जाता है, और मैं अपने आप से ही समझने की चेष्टा करने लगती हूँ कि भारत विकास परिषद् क्या है?

तीन शब्दों से मिल कर बना यह नाम अपने आप में पूरा दर्शन समेटे है। **भारत**, जैसा कि नाम से ही विदित होता है मात्र कोई भूगोल नहीं है, यह मात्र पृथ्वी का टुकड़ा नहीं है, सागर और पर्वत श्रृंखलाओं का योग मात्र नहीं है। यह कुछ सहस्राब्दियों का इतिहास मात्र भी नहीं है। यह लक्ष्योन्मुखी तथा प्रक्रियोन्मुखी शब्द है। इस शब्द से ही पता लगता है कि यह मूल्यों की समष्टि की ओर निरन्तर अग्रसर होने का नाम है। और इस समष्टि में 'भा' अर्थात् 'प्रकाश' में 'रत' रहने वाला 'भारत' है। जो निरन्तर ज्ञान की साधना में रत रहता है वही भारत है। प्रकाश ज्ञान का बोधक है और अंधकार अज्ञान का। इसी लिये मैंने कहा कि इस शब्द में उद्देश्य और क्रिया दोनों अन्तर्हित हैं। फिर प्रश्न उठता है ज्ञान क्या है? क्या कुछ जानकारियों को एकत्रित कर उन्हें कण्ठस्थ कर कुछ डिग्रियाँ प्राप्त करने का नाम ज्ञान है? अथवा धनोपार्जन की क्षमता को अधिक से अधिक प्राप्त करने का नाम ज्ञान है? अथवा भौतिकी के कुछ नियमों की जानकारी ज्ञान है, अथवा कुछ प्रकल्पनाओं के आधार पर मानव मस्तिष्क की तर्क शक्ति के विशद खेल का नाम ज्ञान है। संक्षेप में कहें तो भौतिकी, रसायन एवं गणित की जानकारी का नाम ज्ञान है। पूरा विश्व अस्मरणीय काल से लगा हुआ है मानवशरीर की रचना एवं

उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों की जानकारी एवं उनका निदान ढूँढ़ने में। किन्तु जैसे-जैसे ढूँढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे पहेली और उलझती जाती है। आप कहेंगे भारत विकास परिषद् क्या है? इसे समझाने की बात करते-करते मैं इतना विषयान्तर क्यों कर रही हूँ किन्तु वस्तुतः यह इस प्रश्न के उत्तर का केन्द्र है। भारतीय मनीषा ने इन सभी विद्याओं को अप्रमा की श्रेणी में रखा है।

भारतीय चिन्तन परम्परा यहां भी पाश्चात्य परम्परा से भिन्नता रखती है। भारतीय चिन्तन में ज्ञान के भी दो भेद किये हैं: प्रमा एवं अप्रमा। निश्चित एवं यथार्थ ज्ञान को प्रमा कहते हैं। गणितीय ज्ञान में निश्चितता होती है किन्तु यथार्थता नहीं। अतः वह प्रमा नहीं है। दूसरी ओर प्राकृतिक विज्ञानों में यथार्थता एक सीमा तक होती है किन्तु निश्चितता नहीं होती। संशय, स्मृति, तर्क एवं भ्रम ये चारों अप्रमा (मिथ्या ज्ञान) की श्रेणी के अन्तर्गत रखे गये हैं।

अतः हमारी चिन्तन परम्परा में आत्मतत्व के ज्ञान को ही प्रमा की संज्ञा दी गई है। बाह्य जगत का ज्ञान व्यक्ति को अपने स्वत्व को समझने में सहायक नहीं होता। आत्मज्ञान ऐसा ज्ञान है जिसे जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। यह सत् है अर्थात्, चित् है अर्थात् चैतन्य तथा पूर्ण आनन्द स्वरूप है। जिसे जानने के बाद दुःखों से आत्यंतिक एवं एकांतिक निवृत्ति हो जाती है अर्थात् सदा के लिये और निश्चित् रूप से दुःखों से मुक्ति हो जाती है। यही परम पुरुषार्थ है। सांख्य दर्शन ने मोक्ष को इसी रूप में परिभाषित किया है इसी लिये अपने यहाँ कहा गया है, 'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या या ज्ञान वह है जो आप को सभी बंधनों से, क्षुद्र स्वार्थ की सीमाओं से, दुःख और शोक से मुक्त कर दे।

इस ज्ञान की साधना में रत है भारत।

ऐसे भारत की **विकास** की बात भारत के परिप्रेक्ष्य में ही हो सकती है। हम पश्चिम से उधार लिये हुए विकास के मॉडल की नकल नहीं कर सकते। हमारे लिये विकास का तात्पर्य भौतिक समृद्धि अथवा भौतिक सुख सुविधाओं की विपुलता नहीं है। यह सच है कि हमारे अस्तित्व की सब से बाहरी परत भौतिक शरीर है, जो बुद्धि, मन तथा इन्द्रिय युक्त है। किन्तु हमारे लिये यह शरीर साधन मूल्य रखता है स्वयं साध्य नहीं है। इसी संदर्भ में शंकराचार्य का

एक श्लोक स्मरणीय है:

'पूजा ते विषयोपमोग रचना, निद्रा समाधि स्थितिः।
संचारः पदयो प्रदक्षिण विधि, स्तोत्राणि सर्वा गिरो॥
यद्यत् कर्म करौमि तत्तदखिलम्, शम्भौ तवाराधनम्'

''अर्थात् इन्द्रियों द्वारा विषयों का उपभोग भी ऐसा हो मानो वह तुम्हारी ही पूजा है, निद्रा की स्थिति भी तन्द्रा या आलस्य वाली नहीं अपितु समाधि जैसी हो और पद संचलन तुम्हारी प्रदक्षिणा जैसा हो। हे शम्भो मैं जो भी कर्म करूँ वह तुम्हारी आराधना पूजा जैसा हो।'' कर्म योग की चरम परिणति है। यह और यही हमारे विकास की अवधारणा का चरम लक्ष्य है, यही विकास का भारतीय मॉडल है जहाँ न तो बुद्धि विलास स्वयं साध्य है, न मन और इन्द्रियों की बेलगाम इच्छाओं की शरीर के माध्यम से तृप्ति लक्ष्य है अपितु ये सभी अनुशासित, संयमित हों, आत्मज्ञान की ओर निरन्तर अग्रसित हों ऐसा मनुष्य ही विश्व की समस्त समस्याओं का निदान है।

विकास का यह मॉडल मनुष्य को शेष पशु जगत से पृथक करता है। सम्पूर्ण सृष्टि में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें प्रकृति का अतिक्रमण करने की सामर्थ्य है और इसी लिये उसे मूल्यों के जगत का सृष्टा कहा है और इसी अर्थ में वह स्वतंत्र है अर्थात् वह किसी तंत्र (System) से बंधा नहीं है। वह अपने आप अपना तंत्र हैं। पशु भूख लगने पर, भोजन सामने आते ही उस पर टूट पड़ता है फिर चाहे उसे कितना ही प्रशिक्षित क्यों न किया गया हो। दूसरी ओर भूख न होने पर अथवा रुग्ण होने पर वह कभी भी भोजन की ओर अभिमुख नहीं होता। इसके विपरीत मनुष्य भूख लगने पर भी उपवास रखने का निश्चय कर सकता है तो दूसरी ओर बीमार होने पर भी, भूखा न होने पर भी, सुस्वादु भोजन से लालायित हो भोजन कर सकता है यह सोच कर कि चलो कोई पाचक चूर्ण खा लेंगे। और इसीलिये वह स्वतंत्र है। वह पशु से नीचे गिर सकता है तो देवत्व ही नहीं ईश्वरत्व को भी प्राप्त कर यदि सकता है। परिषद् इसी देव-मानव के निर्माण की प्रक्रिया में रत है। ऐसे मनुष्य की जो 'सर्व हिताय लोक हिताय' समर्पित हो, दूसरे की पीर जिसकी आंखों को नम कर दे। **स्वार्थ से परार्थ और फिर परमार्थ तक की यात्रा का नाम विकास** है। यही हमारी पहचान है विश्व में, जिसके लिये भारत

जाना जाता है। अपनी गरीबी, अपनी बेरोज़गारी, अपनी अशिक्षा सबके बावजूद आज भी भारत का जन इसी आदर्श को सर्वोपरि मानता है। इस भारतीय चेतना को फिर से रेखांकित करना, गति देना, इसे विश्व के हर कोने तक पहुंचाना जिस से यह सृष्टि मनोरम बनी रहे, भारत विकास परिषद् का एजेंडा है।

राम और कृष्ण की, बुद्ध और महावीर की, पातंजलि और कणाद की, शंकराचार्य और रामानुज की, रामकृष्ण और विवेकानन्द की एवं दयानन्द की यह पुण्य श्रृंखला अनवरत आगे बढ़ती रहेगी यह हमारा विश्वास और आस्था दोनों ही है। अस्मिता की इसी तीर्थ-यात्रा का नाम भारत विकास परिषद् है और आप और हम इस यात्रा के सहयात्री हैं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने एक स्थान पर कहा है :

'अपना प्रश्न पत्र भिन्न है अतः उत्तर भी भिन्न होगा। जीवन और जगत को देखने का हमारा नज़रिया भिन्न है और इसीलिये हमारी समस्या दूसरी है, दूसरी ही नहीं व्यापक भी है। अतः निश्चय ही समाधान भी हमारी माटी की गन्ध से ही मिलेंगे और वे समाधान हमारी पहचान होंगे। यदि उन्हें छोड़ दिया तो हम भी यूनान और ग्रीस की तरह पृथ्वी के नक्शे पर गुमनाम हो जायेंगे। आइये हम सब मिल कर प्रभु से प्रार्थना करें कि वह हमें शक्ति दे,भक्ति और समर्पण का भाव दे।' ●

– लेखिका भारत विकास परिषद् की उपाध्यक्ष
एवं संघ लोक सेवा आयोग की पूर्व सदस्या हैं।

WISDOM

- To know when be generous and when firm-that is wisdom.
- We are wise not by the recollection of our past, but by the responsibility for our future.
- Science is organized knowledge, wisdom is organised life.
- Besides the noble art of getting things done, there is the noble art of leaving things undone. The wisdom of life consists in the elimination of non essential.

''राष्ट्रदेवो भव'': एक सिंहावलोकन

❑ देव नारायण भारद्वाज

ज्ञान प्रभा का उदयाचल : हिन्दुस्तान, इन्डिया, भारत व आर्यावर्त जम्बू के एक ही भूभाग के विभिन्न नाम हैं, जो नाम के अनुसार अपने अभिलक्षणों का व्याख्यान करते हैं। हिमालय के 'हि' से आरम्भ कर कन्या कुमारी स्थित विन्दुसरोवर के 'न्दु' तक विस्तीर्ण स्थान ही हिन्दुस्थान है, जिससे इसके विस्तार का पता चलता है। हिमालय पर्वत शृंखला तिब्बत के दक्षिण में अर्द्धचन्द्र वलयाकार है। यह चन्द्रमा का वलय-विस्तार दक्षिण भारत तक बढ़ता दिखाई देता है। इसीलिए चीनी यात्री ह्यूनसांग ने इस भूभाग को इन्दु (चन्द्रमा) कहा जो इन्दिया से इन्डिया बन गया। यह है इस भूप्रदेश की आकर्षक रूपाकृति। भारत (भा+रत) प्रकाश में सतत् संलग्न रहने के कारण ही इस धरती की ज्ञान प्रसारकगुण गरिमा है। यास्काचार्य के अनुसार आर्य ईश्वर पुत्रः अर्थात प्रभु गुण व्रतधारी सर्व प्रथम श्रेष्ठ आस्तिक मानवीय सन्तानों से आच्छादित भूमि आर्यावर्त, जो यहाँ के निवासियों की तेजस्विता को प्रकट करती है। 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' (यजु. 7.14) अर्थात् इसकी ही संस्कृति सबसे प्रथम संस्कृति है। जिसकी विद्या सुशिक्षा जनित नीति व व्यवहार पद्धति सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरण की गई। इस प्रकार आप ने देखा कि भारत मात्र मृत्तिका पिण्ड नहीं अपितु साक्षात राष्ट्रदेव है जिसने संसार को जीवन कला व विज्ञान प्रदान किया है।

छः दिशायें होती हैं। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे और ऊपर की दिशायें। अथर्ववेद तक में इन दिशाओं के अधिपति एवं रक्षक देवताओं का नामोल्लेख किया गया है जो क्रमशः अग्नि एवं आदित्य, इन्द्र एवं पितर, वरुण एवं अन्न, सोम एवं शनि, विष्णु एवं वनस्पति, तथा बृहस्पति एवं वृष्टि हैं। इनसे ही व्यक्ति एवं राष्ट्र को ज्ञान, ऐश्वर्य प्राणपोषण,सौम्य ऊर्जा, व्यापक हरीतिमा, तथा रसमयी महनीयता प्राप्त होती है। राष्ट्र में अनिच्छा या संयोग से उत्पन्न जनता नहीं, प्रत्युत पूर्ण कामना एवं प्रकृष्टता के साथ जन्म लेने

वाली प्रजा रहती है। सभी ओर हों जिसमें देव वही हमारा भारत राष्ट्रदेव है।

देवताओं की गोद हेभूमि 'वन्देमातरम्': जहाँ के निवासियों की धारणा है। माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या (अथर्व 12.1.12): यह भूमि मेरी माता और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ। विश्वम्भरा, वसुधानी प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी (अथर्व 12.1.6) के अनुसार हमारी राष्ट्र वसुन्धरा हमारे लिए सर्वस्व सम्भरणकर्त्री धनधान्य सर्व वस्तुओं की दात्री, स्वर्णवक्षी गतिशील जगत में सुरम्य निवास प्रदायिनी तथा मान प्रतिष्ठा अर्जन करने वाली है। 'भूम्मै पर्जन्य पत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे' (अथर्व 12.1.42) अर्थात् पोषण रस पूरिपूर्ण मेघमाल की पत्नी जीवन रस वर्षण से संतृप्त है।

जिधर जाये दृष्टि पायें उधर देवों की सृष्टि : भारत भूमि में सर्वत्र 'मातृ देवोभव' 'पितृदेवोभव 'अचार्य देवोभव' 'अतिथि देवोभव' (तैत्तिरीयोपनिषद) के परस्पर सम्बोधन सुनाई देते हैं। यहाँ हर कोई किसी एक दूसरे का सम्बन्धी है। सभी अपने हैं कोई पराया नहीं है। यहाँ हर कोई किसी से कुछ लेता है और किसी को कुछ देता है। यहाँ आदान-प्रदान का विधान है जो परिग्रह को छोड़ता व अनुग्रह को जोड़ता है। यहाँ 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम् (ऋ. 9.63.5) 'स्वयं श्रेष्ठ बनो और सब को श्रेष्ठ बनाओ' का उद्घोष गुँजरित होता है जिसे सुनकर देश-देशान्तर वासी बिना किसी भेदभाव के यहाँ अध्यात्म् दर्शन, योग ही नहीं विज्ञान के सूत्र भी समझने आते हैं। यहाँ की जननी धरणी से भारी एवं हर जनक आकाश से महान होता है।

सिंहावलोकनकारी सिंहासन के अधिकारी - 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार राष्ट्र की प्रजा अपने राजा को नायक ही नहीं गणपति विनायक के रूप में अनुकरणीय आदर्श मानकर चलती है। वही तो प्रजा का राजा है। राजा ही विष्णु का रूप नहीं होता है प्रजा में भी पंच परमेश्वर वास करते हैं। इसीलिये तो राम, कृष्ण, राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह ही नहीं और भी अनेक राजाओं को प्रजा ने शासक के साथ-साथ अपने देवता व भगवान की मान्यता दी है। क्योंकि 'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्र विरक्षति' (अथर्व 11. 5.17) इन्द्रिय निग्रह ज्ञान पूर्वक हर पीड़ा को सहन कर राजा राष्ट्र की विशेष रक्षा करता है। राजा ही नहीं प्रजा भी राष्ट्र रक्षण एवं संवर्द्धन को विहंगम दृष्टि से देखती व छोड़ती नहीं चली जाती है, वह इसके लिए उंग्रपश्या (सिंहावलोकनकारी) गहन दृष्टि से चिन्तन व सर्वतोमुखी कार्यान्वयन करती

है, राष्ट्र व राष्ट्रपति की रक्षा करती है।

राष्ट्रदेव के वासी सब उपासना अभ्यासी - अपने राष्ट्र को जब देवता मानकर चला जाता है तो कोई भी इसका विनाशक नहीं उपासक ही होता है। यहाँ का हर नागरिक वसु होता है, जो स्वयं सम्यक् रूप से वसना अर्थात रहना एवं व्यवहार करना जानता है। उसे उजाड़ना पसन्द नहीं है, और वह उजाड़ने वालों को सहन भी नहीं करता है। इसीलिये राष्ट्र के प्रत्येक बाल युवा को चौबीस वर्ष की आयु तक इन्द्रिय निग्रह व तप पूर्वक विद्या का उपयोगी पाठ पढ़ाया जाता है। इन्हीं में से निकलते हैं वे युवा जो वसु वृन्द से डेढ़ गुनी आयु तक नियम संयम पूर्वक विद्या का क्रियात्मक अभ्यास करते हैं, और रुद्र संज्ञा प्राप्त करते हैं। इन्हीं रुद्रगण में से छंट कर कतिपय वे तेजोमय तरुण प्रस्तुत होते हैं जो पचास वर्ष की आयु तक त्याग तपस्या एवं साधना पूर्वक राष्ट्रदेव के उत्थान के लिए विद्या विज्ञान के विविध अनुसंधान करके उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं। इन्हें आदित्य संज्ञा से अलंकृत किया जाता है। वसु बनकर ही प्रत्येक कुमार को विवाह करके गृह आश्रम में प्रवेश करने का अधिकार मिलता है। यह वैदिक संस्कृति ही है जो प्रत्येक कुमार या कुमारी कन्या को विवाह के समय सम्राट एवं सम्राज्ञी का न केवल स्वरूप ही प्रदान करती है, प्रत्युत तदनुरूप साजसज्जा एवं शृंगार का अवसर भी प्रदान करती है। इससे भी बढ़कर विवाह मण्डप में इन्हें विष्णु-लक्ष्मी के रूप में पूजित व सम्मानित भी किया जाता है। सफलता पूर्वक जीवन के **निर्वहन हेतु इन्हें विवाह के तीन उद्देश्य समझाये जाते हैं जो धर्म प्रवृति, सुयोग्य सन्तति तथा संयमित रति हैं। सात फेरों से पहले वर कन्या जो यज्ञ करते हैं उनमें प्रमुख होता है राष्ट्रभृत यज्ञ जिसे वर वधु राष्ट्र को ध्वंस से बचाकर उसके संभरण में सहायक होते है।**

पंचसकार प्रेरणास्रोत

1. **सम्पर्क - अग्नि** - चाहे कोई अग्नि के निकट आये, या अग्नि उसके निकट आये, दोनों दशाओं में वह अग्नि स्वरूप बन जाता है।
2. **सहयोग - सूर्य** - सूर्योदय की प्रथम किरण भू के सम्पर्क में आते ही समस्त प्राणी व प्रकृति परस्पर सामंजस्य से क्रियाशील हो उठती है।
3. **संस्कार - चन्द्रमा** - चन्द्रमा की सोलह कलाओं की भाँति सोलह संस्कारों द्वारा सुंसस्कृत मनुष्य द्वितीया समान नन्हा बालक पूर्णिमा समान महापुरुष बन जाता है।
4. **सेवा - वायु** - मरुत प्राणों के संकटग्रस्त होने पर वायु का एक झोंका जीवन दान करता है। वैसे ही आपदाग्रस्त की सेवा से व्यक्ति मारुति नन्दन महावीर सा पूज्य होता है।
5. **समर्पण - यज्ञ** - मन्त्र आहुतियों के 'इदन्न' मम एवं 'स्वाहा' के उद्घोष व्यक्ति व राष्ट्र कल्याणार्थ ही त्याग, समर्पण एवं बलिदान के भाव जगाते हैं।

सर्वमान्य हे राष्ट्र देव! अभिनन्दन - जो वेदमान्य है वह सर्वमान्य है। यजुर्वेद अध्याय 22 के मन्त्र सं. 22 में जो राष्ट्र की वन्दना की गयी है वह अद्वितीय है। इसका कथ्य है कि विद्वानों को ईश्वर की प्रार्थना सहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिए कि जिससे राष्ट्र में पूर्ण विद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुण वाली नारियाँ, सुख देने वाले शक्ति प्रदायक पशु, दुधारू गौयें, सम्य यजमान युवक, इच्छित वर्षा, मिष्ट सुगन्धित फल फूलों से युक्त अन्न औषधि व वनस्पति हों और सर्वत्र योग क्षेम कामनायें पूर्ण हों।

यजुर्वेद का यज्ञ कर्म व्याख्या ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण यज्ञ को विष्णु एवं विष्णु को राष्ट्र की उपमा प्रदान करते हुए व्यक्त करता है 'राष्ट्र वै अश्वमेध':, अर्थात् धरती एवं धरती पुत्रों की शक्ति सम्पन्नता के लिए राष्ट्र स्वयं एक अश्वमेघ यज्ञ है। विष्णु राष्ट्र की चारों दिशाओं में फैली हुई चारों भुजाओं के शंख, चक्र, गदा व पद्म क्रमशः ज्ञानघोष, पुरुषार्थी, गति गम्यता, रक्षक अस्त्र-शस्त्र एवं सुखद विकास के परिचायक हैं। भारत विष्णु की दिशा दिशान्तर में उठी हुई भुजायें प्रहार के लिये नहीं संसार के शृंगार के लिए हैं। इसीलिये तो मनु महाराज की व्यवस्थानुसार आर्यावर्त भारत के अग्रजन्मा मनीषियों से संसार के मनुष्य अपने-अपने योग्य विद्या एवं चरित्रों की शिक्षा प्राप्त करते थे।

राष्ट्रदेव और दानव - जिस प्रकार अन्धकार एवं प्रकाश, रात्रि एवं दिवस तथा विनाश एवं विकास सृष्टि की सनातन परम्परा हैं, उसी प्रकार किंचित उदासीनता एवं असावधानता जनित स्थितियों से राष्ट्र देव समूहों में प्रकट या प्रच्छन्न दानव दल खड़े हो जाते हैं, जो शिष्टाचार को भ्रष्टाचार, प्रेम को घृणा तथा निर्माण को ध्वंस में बदलने का युद्ध छेड़ देते हैं। अल्प होते हुए भी बुराई उसी प्रकार अच्छाई पर भारी पड़ती प्रतीत होती है, जिस प्रकार

एक लीटर पानी को एक चम्मच शक्कर मीठा शर्बत तो नहीं बना पाती है, किन्तु एक चम्मच लवण उसे खारी अवश्य कर देता है। बृहद् इतिहास साक्षी है कि इस देवासुर संग्राम में 'असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतमगमय' का उत्साहवर्द्धक शतपथ गान करने वाले राष्ट्रदेव ही विजयी होते हैं। भारत विकास में ही विश्व का प्रकाश निहित है।

जय भारत वन्देमातरम्। ●

– **'वरेण्यं'** एम.आई.जी. खण्ड संख्या-45,
अवन्तिका कालोनी (ए.डी.ए.) रामघाट मार्ग, अलीगढ़

दीवार

दीवार जड़ होती है,
कठोर होती है।
और ठोस भी
पर मैंने देखी है,
चलती-फिरती एक
और दीवार अपने घर में
मेरी माँ
जो मुझे इस दौड़ती भागती दुनिया के
थपेड़ों से बचाती है।
अपने आँचल की छाँव में
सुरक्षित रखती है
और तैयार करती है मुझे
दुनिया के समर में कूदने के लिए।
और मैं गौरवान्वित होती हूँ कि मेरे
पास भी एक दीवार है,
माँ के आँचल की।

-सुषमा

ग्रामीण बैंक : सपना अब अपना है

❑ ईक्षिता

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद विश्वपटल पर अनेक विकासशील देशों का उदय हुआ। लम्बे औपनिवेशिक शोषण की वजह से इन देशों में गरीबी, निरक्षरता, बेरोज़गारी, पिछड़ापन आदि की गंभीर समस्याऐं थीं। इन समस्याओं के समाधान हेतु अनेक पाश्चात्य मॉडल अपनाए गये। किंतु इन देशों की गरीबी का निवारण नहीं हुआ उल्टे ये देश विश्व बैंक एवं अन्य विकसित देशों के ऋण जाल में फंसते गए।

विकासशील देशों में गरीबी उन्मूलन हेतु बांग्लादेश के अर्थशास्त्री मोहम्मद यूनुस ने सूक्ष्म वित्तयन (माइक्रो फाइनेंस) की अवधारणा दी। सूक्ष्म वित्तयन प्रदान करने के लिए उन्होंने ग्रामीण बैंक स्थापना की। यह बैंक गरीबों को बिना गारंटी के सूक्ष्म ऋण (माइक्रो क्रेडिट) उपलब्ध कराता है। यह मूलत: इस धारणा पर कार्य करता है कि जिन निर्धनों के पास व्यापारिक कौशल, श्रम करने की क्षमता एवं अपना जीवन स्तर सुधारने की इच्छा होती है किंतु वे लोग पर्याप्त पूंजी के अभाव में अपना जीवन स्तर सुधारने में विफल रहते हैं उन्हें बिना गिरवी के भी कर्ज़ दिया जा सकता है। ग्रामीण बैंक सूक्ष्म वित्तयन के अतिरिक्त अन्य वित्तीय सेवाओं जैसे-बचत स्वीकारने, विकास परियोजनाओं का संचालन करने (जिसमें जूट, टेलीफ़ोन एवं ऊर्जा कम्पनी सम्मिलित हैं) से भी जुड़ा है। ग्रामीण बैंक ने निर्धनों के जीवन में प्रभावी ढंग से सुधार किया है। गरीबों के उत्थान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए ग्रामीण बैंक और मो. यूनुस को वर्ष 2006 का शांति नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया है।

मो. यूनुस ने अमेरिका के वेंडरबिल्ट विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। सन् 1974 में बांग्लादेश में पड़े भीषण अकाल ने इन्हें आंदोलित कर दिया। तब इस अकाल से प्रभावित 42 परिवारों

को इनके द्वारा 27 डालर का चिंतामुक्त ऋण प्रदान किया गया। यह 'अल्प ऋण योजना' एक प्रयोग मात्र थी जो सफल रही। इन परिवारों ने छोटी-छोटी विक्रय योग्य सामग्रियां तैयार करके बेचीं। आलोचनाओं एवं आशंकाओं के बावजूद मो. यूनुस इस बात पर दृढ़ता से विश्वास करते रहे कि बड़े पैमाने पर चिंतामुक्त ऋण प्रदान करके बांग्लादेश से ग्रामीणों की गरीबी समाप्त की जा सकती है।

ग्रामीण बैंक वास्तव में एक संयुक्त शोध परियोजना के रूप में प्रारंभ किया गया था। प्रो. यूनुस एवं चिटगांव विश्वविद्यालय द्वारा 1976 में ग्रामीण निर्धनों को बिना गारंटी के ऋण देने का प्रायोगिक शोध प्रारंभ हुआ। शुरू में इस योजना में जोबरा एवं निकटवर्ती गांवों को सम्मिलित किया गया। ग्रामीण बैंक को अप्रत्याशित सफलता मिलने पर इसे बांग्लादेश सरकार के समर्थन से अन्य क्षेत्रों में भी फैलाया गया। 1983 में कानून पारित करके ग्रामीण बैंक को एक स्वतंत्र बैंक के रूप में मान्यता दे दी गई।

ग्रामीण बैंक का मुख्यालाय ढाका में है। इसकी दो हज़ार से अधिक शाखाएं पूरे बांग्लादेश में ग्रामीण निर्धनों को सूक्ष्म ऋण उपलब्ध कराती हैं। इसकी सफलता ने पूरे विश्व में अनेक समरूप योजनाओं को प्रेरित किया है।

ग्रामीण बैंक द्वारा उपलब्ध कराया गया ऋण निर्धनों के समूह (जिसमें पांच लोग होते हैं) को दिया जाने वाला 'अल्पमात्रा ऋण' होता है। ऋण प्राप्तकर्ता समूह को 'स्वयं सहायता समूह' कहते हैं। इसको प्रदान किया जाने वाला ऋण बिना गारंटी के आसान शर्तो पर किसी ऐसी व्यापारिक परियोजना के लिए दिया जाता है, जिसमें स्थानीय संसाधनों का प्रयोग करके माल तैयार होता हो और स्थानीय बाज़ार में ही खपा दिया जाता हो। इस परियोजना की लागत का कुछ अंश स्वयं सहायता समूह खुद एकत्र करता हैं शेष राशि बैंक द्वारा उपलब्ध करा दी जाती है। समूह के प्रत्येक सदस्य पर ऋण वापस करने का निश्चित् दायित्व होता है जो उसके अंशदान एवं लाभ के अनुपात में होता है। यदि समूह का एक भी सदस्य ऋण भुगतान करने में विफल रहता है तो पूरे समूह को ऋण की अगली किश्त के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाता हैं। यहां उल्लेखनीय है कि स्वयं सहायता समूह को ऋण राशि अनेक चरणों में प्रदान की जाती है। प्रतिमाह समूह ऋण के कुछ हिस्से का भुगतान करता है तथा उसे बैंक से ऋण की अगली किश्त मिलती जाती है।

इन ग्रामीण बैंकों ने महिला सशक्तिकरण में उल्लेखनीय योगदान किया है। कुल 97 प्रतिशत ऋण महिलाओं को दिया गया है। अनुभव के आधार पर देखा गया है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं ऋण वापस करने और पूंजी राशि का बेहतर उपयोग करने में आगे हैं। ग्रामीण बैंक की सर्वाधिक उल्लेखनीय सफलता इसकी उच्च भुगतान वापसी दर है। ग्रामीण बैंक, जो बिना किसी भुगतान गारंटी के ऋण देता है उसकी 97 प्रतिशत से अधिक राशि वापस आ जाती है। जबकि बड़े बैंक जो गारंटीशुदा ऋण देते हैं मात्र 88 प्रतिशत राशि ही वापस पाते हैं। ग्रामीण बैंक ने बांग्लादेश के लगभग पांच करोड़ निर्धनों को निर्धनता से मुक्त कराया है। इन निर्धनों की न केवल आय बढ़ी है वरन् उनका पूरा जीवन स्तर भी बेहतर हुआ है। इनके सभी बच्चे स्कूल जाते हैं। परिवार के सभी सदस्य प्रतिदिन कम से कम तीन बार भोजन करते हैं। इनके पास बरसात से बचने लायक मकान है। वे कम से कम 300 टका प्रति सप्ताह ऋण पुनर्अदायगी की क्षमता रखते हैं। ग्रामीण बैंक के दो दर्जन से अधिक व्यावसायिक प्रतिष्ठान हैं। यह संचार, फ़ोन, ऊर्जा, शिक्षा, स्वास्थ्य, कपड़ा व्यापार आदि क्षेत्रों में व्यावसायिक गतिविधियां चलाता है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में तालाब प्रबंधन व मत्स्य पालन में भी सक्रिय है।

ग्रामीण बैंक का 'संघर्षशील सदस्य कार्यक्रम' भी एक उल्लेखनीय तथ्य है। इसमें भिखारियों को लगभग सौ टका का ब्याज मुक्त ऋण अत्यंत उदार शर्तों पर दिया जाता है। ऋणी को नि:शुल्क जीवन बीमा भी उपलब्ध कराया जाता है। भिखारी को भिक्षाटन छोड़ने को नहीं कहा जाता है एवं उसे छोटे-मोटे व्यापार को गंभीरता से चलाने की प्रेरणा दी जाती है। आगे उन्हें प्रशिक्षण भी दिया जाता है। वर्ष 2005 तक पैंतालीस हज़ार भिखारियों को 2 करोड़ 80 लाख टका का ऋण दिया जा चुका था। भारत में भी इस योजना का प्रतिरूप अपना कर भिखारियों का जीवन स्तर सुधारा जा सकता है। एशियाई देशों में फैली गरीबी की समस्या से निजात पाने का यह ग्रामीण बैंक ज़मीनी रूप है।

भारत को इस दिशा में अभी अधिक गंभीर एवं ईमानदार प्रयास करने की आवश्यकता है एवं तभी बांग्लादेश के ग्रामीण बैंक के प्रयासों की सफलता को भारत में फलीभूत किया जा सकता है।

****

माइक्रो क्रेडिट : कांटों भरा सुहाना सफ़र

❑ उमा शंकर मिश्र

ग्रामीण संस्कृति में रची-बसी आपसी सहयोग एवं विश्वास की भावना को माध्यम बनाकर माइक्रो-क्रेडिट की जड़ों को पानी दिया जा रहा है। उसकी संकल्पना के मूल में सहकारिता की जड़ें समाई हैं और गरीबी उन्मूलन के लिए माइक्रो-क्रेडिट को महत्वपूर्ण माना जा रहा है। लेकिन इस पर अब सवाल भी उठने लगे हैं।

कुछ समय पूर्व कृषि मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा था कि देश भर के छोटे उत्पादकों को संगठित करने में सहकारी समितियों की भूमिका महत्वपूर्ण साबित हो सकती है। बाज़ार की स्थिति के मुताबिक ग्रामीण उद्यमियों के हितार्थ मानकों के निर्धारण में भी सहकारी समितियां उल्लेखनीय योगदान दे सकती हैं। इन समितियों के विषय में कहा जाता है कि ये 'समान आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने वाले व्यक्तियों के ऐसे संगठन हैं, जिनमें समान अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों के आधार पर स्वेच्छापूर्वक मिलकर इसके सदस्य कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार बनाए गए समूह के संचालन का आधार सदस्यों के परस्पर हस्तांतरण पर आधारित होता है और इस प्रक्रिया में निहित जोखिम भी उन्हीं का होता है, जिससे इनका भौतिक एवं नैतिक लाभ संगठन के सदस्यों को बराबर मिलता रहे।' पिछले कुछ समय से 'स्वयं सहायता समूहों' में की जाने वाली लघु बचतों एवं माइक्रो-फाइनेंस गतिविधियों को गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण माना जा रहा है। इसके सकारात्मक परिणामों पर एक तरह से मुहर तब लग गई थी जब बांग्लादेश स्थित ग्रामीण बैंक के मो. यूनुस को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए सरकार का रुझान भी इस ओर बढ़ा है। 11वीं योजना में इसके लिए विशेष कदम उठाए जाने की बात कही जा रही है। हालांकि भारत में नाबार्ड, नैफेड, कृभको, इफको, अमूल, एनएफआईसी, ट्राईफेड, फिश कापफेड, नेशनल

फेडरेशन ऑफ लेबर कोआपरेटिव जैसे चंद गिने चुने संस्थानों को छोड़कर सहकारिता के क्षेत्र में कुछ विशेष नहीं किया जा सका है।

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक 5.41 लाख समितियां भारतीय सहकारी क्षेत्र का हिस्सा थीं, जिनकी पहुंच देश के शत् प्रतिशत गांवों तक बताई जाती है। इतना सब कुछ होते हुए भी लम्बे समय तक देश की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा बने रहे किसान आत्महत्या को विवश हो रहे हैं, तो निश्चित् तौर पर कहीं न कहीं कुछ कसर रह गई है। शायद यही कारण है कि देश की करीब 30 प्रतिशत आबादी अभी भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने को विवश है। 2020 तक भारत को विकसित देखने के सपने को साकार करने के लिए शायद अब इस समस्या को गंभीरता से समझा जाने लगा है और गरीबी उन्मूलन के लिए माइक्रो-फाइनेंस को प्रभावी अस्त्र मानकर निरंतर इसके प्रोत्साहन हेतु प्रयास किए जा रहे हैं। इस प्रक्रिया के माध्यम से गरीबों को लघु ऋण उपलब्ध करवाया जाता है और लोगों के उद्यमीय कौशल को परख कर उन्हें इसके व्यावसायिक उपयोग की जानकारी प्रदान की जाती है। भारत में आज हज़ारों स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी लाखों महिलाएं अपने उद्यमीय कौशल के बलबूते आत्मनिर्भर बन रही हैं।

'हवेली तालुका' पुणे की कमर सुल्ताना भी इसी कड़ी का एक हिस्सा हैं। एक समय था जब शौहर के गुज़र जाने के बाद एक ओर तो उन्हें मानसिक यंत्रणा के दौर से गुज़रना पड़ रहा था, वहीं परिवार के भरण पोषण का संकट भी आन पड़ा था। अभी तक दुनिया से खुद को अलग रखने वाली सुल्ताना को सूझ नहीं रहा था कि आखिर वह क्या करे जिससे परिवार की गाड़ी को पुनः पटरी पर लाया जा सके। ऐसे में एक गैर सरकारी संस्था 'ग्राम एवं महिला विकास मंडल' के कार्यकर्ताओं की प्रेरणा से सुल्ताना गांव में ही चल रहे गणेश बचत गट्ट की सदस्य बन गई। आरंभ में 20 रुपये की किस्त भरना भी सुल्ताना के लिए मुश्किल हो जाता था। लेकिन सुल्ताना ने परिस्थितियों से हार नहीं मानी और आसपास कुछ सिलाई का काम करने लगी। काफ़ी मशक्कत के बाद भी पारिश्रमिक न के बराबर ही मिल पाता था। इससे गुज़र-बसर करना मुश्किल हो जाता था। सुल्ताना की जिंदगी में बदलाव तब आया जब उन्होंने कोल्हापुर की एक संस्था द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रम के तहत सिलाई के काम में दक्षता प्राप्त कर ली। 'सिद्धहस्त' नामक इस संस्था के माध्यम से सुल्ताना को सिलाई मशीन खरीदने के लिए ऋण भी

मिल गया। इस तरह उन्होंने काम करना शुरू किया तो 300 रुपये तक मासिक कमाने लगी। उत्साह बढ़ा और आज सुल्ताना 'मिड-वाईफ' एवं 'रंगोली किट' इत्यादि के माध्यम से 1500 रुपये मासिक कमाने लगी है। यही है माइक्रो-फाइनेंस की संकल्पना को साकार करने की सोच का आधार जिससे पिछड़ेपन और गरीबी का दंश झेल रहे लोगों को आर्थिक तौर पर सक्षम बनाकर उनके जीवन स्तर को बेहतरी की ओर ले जाया जा सकता है। भारतीय गांवों को स्वावलंबी बनाने के उद्देश्य में एक अध्याय तब जुड़ गया, जब सरकार ने ग्रामीण आर्थिक संरचना में सुधार हेतु स्वयं सहायता समूहों के गठन और माइक्रो-फाइनेंस के माध्यम से भारतीय गांवों की तस्वीर बदलने की कवायद तेज़ कर दी। इस कार्य में सरकारी एवं गैरसरकारी संस्थाओं का हस्तक्षेप भी बढ़ा है। इसी का परिणाम है कि सुल्ताना जैसी हज़ारों महिलाएं निरक्षर होने के बावजूद स्वावलंबी बनने की ओर अग्रसर हैं।

ग्रामीण एवं आर्थिक मामलों के जानकार एच.एम. देसरडा इस तरह की पहल को महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि ऐसे उद्योगों की फेहरिस्त बहुत लम्बी है जिन्होंने बैंकों का करीब सवा लाख करोड़ रुपया स्वयं को दिवालिया घोषित कर डुबा दिया है। आगे वे कहते हैं कि स्वयं सहायता समूहों की गतिविधियों को पुरानी ग्रामीण व्यवस्था का ही हिस्सा कहा जा सकता है; जिसमें ज़रूरत के समय एक दूसरे के प्रति मदद का भाव ग्रामीणों के मन में हुआ करता था। आधुनिक दौर में ग्रामीणों के उसी विश्वास को आधार बनाकर गैर सरकारी संस्थाओं के सहयोग से स्वयं सहायता समूहों का गठन गरीबी के खिलाफ निर्णायक जंग में मददगार साबित हो सकता है। स्वयं सहायता समूहों में करीब 90 प्रतिशत तक महिलाओं की भागीदारी होती है जो अपनी छोटी बचतों को समूह में जमा करती हैं। इस प्रकार के समूहों में लेन-देन का व्यवस्थित लेखा-जोखा रखने के लिए विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाए उन्हें ट्रेनिंग देती हैं। महाराष्ट्र के औरंगाबाद की एक स्वयंसेवी संस्था 'दिलासा' ने स्वयं सहायता समूहों का गठन कर उनके कौशल को परिष्कृत करने का काम किया है। इस गैर सरकारी संस्था ने ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक गतिविधियों का अध्ययन किया और पाया कि ऐसी सैकड़ों परंपरागत कलाएं हैं जिनमें ग्रामीणों को महारत प्राप्त है। लेकिन उन कलाओं के व्यावसायिक प्रयोग को वे नहीं जानते थे और न ही उत्पादों को बेचने के लिए उनके पास बाज़ार उपलब्ध था। इसके अलावा एक और बात जो सामने आई वो ये थी कि ग्रामीणों के बनाए हुए उत्पाद बाज़ार की

प्रतिस्पर्धा का सामना करने में सक्षम नहीं थे। गांव में ही बनने वाले अचार, पापड़, डेयरी उत्पाद, हैण्डलूम उत्पाद जैसे कार्य गृह उद्योग का हिस्सा हैं और ये ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मज़बूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं बशर्ते गुणवत्ता का ध्यान रखा जाए। 'दिलासा' से सम्बद्ध वैशाली खाडिलकर बताती हैं कि इसी के चलते स्वयं सहायता समूह की महिलाओं को गुणवत्ता बरकरार रखने के लिए विशेष ट्रेनिंग भी दी जाती है। कोई व्यवसाय शुरू करने के लिए स्थानीय संसाधनों का ही उपयोग किया जाता है। बुआई एवं वर्षा के दिनों में स्वयं सहायता समूहों के काम में थोड़ी गिरावट आ जाती है। लेकिन कुछ समय बाद फिर उसी तेजी से सब कुछ चलने लगता है। आवश्यकता पड़ने पर 'दिलासा' व्यवसाय शुरू करने के लिए ऋण उपलब्ध करवाती है और समूह की महिलाओं द्वारा बनाए गए उत्पाद के श्रम का मूल्य चुकाकर बाज़ार में बेचने का काम भी करती है। 'दिलासा' की आनुषंगिक संस्था 'महिला स्वयं सहायता गटांयी संस्था' ने 493 स्वयं सहायता समूहों का गठन किया है। यहां वार्षिक ब्याज दर पर विभिन्न व्यावसायिक गतिविधियां शुरू करने के लिए ऋण भी प्रदान किया जाता है। स्वयं सहायता समूह का प्रत्येक सदस्य ऋण की किस्त के अलावा 50 रुपये मासिक इस सहकारी संस्था में जमा करता है।

बांग्लादेश में सन् 1976 में मो. यूनुस ने अपनी जेब से 27 डालर लगाकर ग्रामीण बैंक की नींव डाली थी। आज वह एक वटवृक्ष की भांति फैल चुका है। 30 साल बाद आज 66 लाख लोगों ने इससे कर्ज़ लेकर अपने जीवन-स्तर को सुधारने का प्रयास किया है। इसमें महिलाओं की भागीदारी 97 प्रतिशत तक है। दुनिया भर में लघु वित्त प्रदान करने वाली हजारों संस्थाएं करोड़ों लोगों को ऋण मुहैया करवा रही हैं। 1982 में स्थापित डेवलपमेंट बैंक 'नाबार्ड' भारत में गांवों की समृद्धि को सुनिश्चित् करने के उद्देश्य से कार्य कर रही है। उल्लेखनीय है कि नाबार्ड का गठन ऐसे समय में किया गया है जब यह महसूस किया जाने लगा कि तमाम विशेष योजनाएं एवं ग्रामीण बैंकिंग प्रणाली गांवों में फैली गरीबी को दूर करने का कारगर उपाय नहीं हो सकती है क्योंकि ग्रामीण बैंकों एवं सहकारी बैंकों के मकड़जाल के बावजूद अज्ञानतावश लोग उनका उपयोग नहीं कर पा रहे थे। वास्तव में ग़रीबों को सब्सिडी-युक्त क्रेडिट की अपेक्षा इन सुविधाओं की उपलब्धता की समस्या भ्रष्टाचार एवं अन्य कारणों से बनी हुई थी। आज नाबार्ड के प्रयासों के परिणाम स्वरूप भारत में स्वयं सहायता समूहों को बैंकिंग सिस्टम से जोड़े जाने का कार्यक्रम दुनिया के सबसे तेज़ी से

फैल रहे विकास कार्यक्रमों में से एक माना जा रहा है। देश भर में इससे 28,000 गैर सरकारी संस्थाएं और 500 बैंकों की करीब 30 हज़ार शाखाएं जुड़ चुकी हैं। वर्ष 2002 में 24 हज़ार स्वयं सहायता समूहों को 545.4 करोड़ रुपये इस कार्यक्रम के तहत वितरित किए गए थे। देश भर में आज 22.38 लाख स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से 3.29 करोड़ परिवार माइक्रो-क्रेडिट एवं अन्य बैंकिंग सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं।

फूलों के साथ अकसर काँटों के होने की बात कही जाती है। माइक्रो-क्रेडिट भी इससे अलग नहीं है। डा. सुधीरेन्द्र शर्मा जैसे जानकार इसके आगामी परिणामों को लेकर चिन्ता जताते हुए इसे गरीबों के शोषण का एक रूप मानते हैं। 24 से 36 प्रतिशत की ब्याज दर को वे इसके लिए ज़िम्मेदार ठहराते हैं। साथ ही वे ये भी कहते हैं कि इसके कारण ग्रामीणों का कृषि जैसे प्राथमिक क्षेत्र से पलायन और भी बढ़ेगा। उनका मानना है कि इस प्रक्रिया से कैश-फ्लो तो बढ़ता है, लेकिन इसे गरीबों के सशक्तिकरण का स्थायी हल नहीं माना जा सकता। बल्कि इससे गैर सरकारी संस्थाओं को धंधे का ज़रिया मिल गया है तो बैंकों को अपने मकड़जाल को फैलाने का रास्ता। वहीं देशी-विदेशी कंपनियाँ इस वर्ग को भावी उपभोक्ता के तौर पर देखते हुए उत्साहित हैं। उनके मुताबिक ऋण को लाभ में परिवर्तित करना भी एक चुनौती है। ज़रूरी नहीं है कि गरीबों को इससे फ़ायदा ही होगा। क्योंकि, उनकी महत्वपूर्ण समस्या उपभोग को लेकर है। ऋण की भरपाई के लिए भी कई बार ग़रीबों को अन्य स्रोतों से भारी शर्तो पर ऋण लेना पड़ता है, जिससे वे उबर नहीं पाते। शायद इसी का परिणाम है कि बांग्लादेश में ऋण की भरपाई न कर पाने के क ारण महिलाओं को जेल भी जाना पड़ा है। साथ ही महिलाओं द्वारा अपनी बेटियों को काम में लगा लेने से उनका शिक्षण भी प्रभावित होता है। ऐसे में स्थायी विकास के सवाल के साथ-साथ शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे प्रश्न भी खड़े हो जाते हैं जिसके बिना किसी भी तरह के विकास को असंतुलित ही माना जाएगा।

देखा जाए तो अधिसंख्यक ग्रामीण अपनी उपभोग सम्बन्धी ज़रूरतों के लिए बैंकों की बजाय साहूकारों से भारी ब्याज दर पर ऋण लेते रहे हैं। क्योंकि, उनके पास सिक्योरिटी के नाम पर कुछ नहीं होता था। आज माइक्रो-क्रेडिट को इस समस्या के विकल्प के तौर पर देखा तो जा रहा है, लेकिन इसके दूरगामी परिणामों को भी दरकिनार नहीं किया जा सकता। इस पर भी सोचने की आवश्यकता है।

विशेष आर्थिक ज़ोन (SEZ) संकल्प एवं समस्यायें

❑ डॉ॰ के. एल. गुप्ता

पिछले एक वर्ष में औद्योगिक क्षेत्रों के लिये कृषि भूमि के अधिग्रहण के प्रश्न ने पूरे देश में विचारपूर्ण चिन्तन को प्रेरित किया है और इस सन्दर्भ में 'नन्दीग्राम' का विवाद पश्चिम बंगाल तक ही सीमित न रहकर सर्वोच्च न्यायालय में विचार एवं संसद में परिचर्चा का विषय बन गया। उपरोक्त पृष्ठ भूमि में औद्योगिक विकास एवं निर्माण वृद्धि के लिये संकल्पित नवीन अवधारणा, विशेष आर्थिक ज़ोन (Special Economic Zone) में निहित संकल्पों का अध्ययन एवं समस्याओं का विश्लेषण एक महत्वपूर्ण एवं सामाजिक आर्थिक चिन्तन है।

विशेष आर्थिक ज़ोन क्या है?

विशेष आर्थिक ज़ोन (सेज़) से आशय ऐसे भौगोलिक क्षेत्र से है जिसमें आर्थिक एवं राजकोषीय नियम तथा व्यवस्थायें देश के परम्परागत एवं सामान्य आर्थिक नियमों से उदार होती हैं, जिससे उस क्षेत्र में सरलता एवं तीव्रता से औद्योगिक क्रियाओं को विकसित किया जा सके। परिभाषा के रूप में "Sezs are specifically delineated duty and tax free enclaves treated as a foreign territory for a more liberal regime in respect of foreign investment and various economic laws." सेज़ के सम्बन्ध में देश में अप्रैल 2000 में घोषित नीति में यह स्पष्ट किया गया था कि "Sez will work as an engine for economic growth supported by quality infrastrcture complemented by an attractive fiscal package with the minimum regulations"

भारत में 'सेज़' की संकल्पना

भारत एशिया के ऐसे पहले देशों में एक था, जिन्होंने निर्यात प्रोत्साहन के लिये 'निर्यात प्रक्रियन ज़ोन' प्रारंम्भ किये और सन् 1965 में ऐसा पहला ज़ोन कान्डला में स्थापित किया गया। उसके पश्चात् ऐसे सात ज़ोन और स्थापित किये गये, लेकिन वे आशाओं के अनुरूप परिणाम नहीं दे सके। सन् 2000 में चीन के 'सेज़' से प्रेरणा लेकर भारत में भी सेज़ स्थापित करने की नीति की घोषणा तत्कालीन वाणिज्य मंत्री मुरासोली मारन द्वारा की गई। यह उल्लेखनीय है कि विश्व में पहले और सर्वाधिक प्रसिद्ध सेज़ों में चीन के 'Shenzhn' का सेज़ महत्वपूर्ण है जो बीस वर्ष में 41 लाख की आबादी वाले एक बड़े नगर में परिवर्तत हो गया।

विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार सन् 2007 में विश्व के 120 देशों में सेज़ व्यवस्था के अन्तर्गत 3,000 से अधिक परियोजनायें कार्यशील थीं। भारत में 'सेज़' संकल्पना की सुव्यवस्था की दृष्टि से विशेष आर्थिक ज़ोन अधिनियम 2005 भी पारित किया गया। नवम्बर 2007 के प्रारम्भ तक देश में 395 सेज़ों को औपचारिक अनुमोदन तथा 165 सेज़ों को सैद्धान्तिक अनुमोदन दिया गया। अधिसूचित सेजों की दृष्टि से आन्ध्र प्रदेश (46) का प्रथम स्थान है।

देश के विभिन्न विशेष आर्थिक ज़ोन्स में दिसम्बर 2001 के अन्त तक 1,00,000 करोड़ रु. से अधिक विनियोग होने तथा 5,00,000 से अधिक व्यक्तियों को रोज़गार मिलने का अनुमान है।

देश में जिन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सेज की संकल्पना की गई है वे हैं (अ) अतिरिक्त आर्थिक क्रियाओं का सृजन (ब) वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यात को प्रोत्साहन (स) घरेलु एवं विदेशी स्रोतों से विनियोग को प्रोत्साहन (द) संरचनात्मक सुविधाओं का विकास। (च) रोज़गार अवसरों का सृजन

सेज़ को सुविधाएँ एवं प्रेरणाएँ

विशेष आर्थिक ज़ोन में व्यावसायिक इकाइयों की स्थापना और संचालन के लिये उनके विकास, परिचालन एवं रखरखाव की प्रक्रिया का सरलीकरशा किया गया। उनमें इकाइयों की स्थापना के लिये केन्द्र एवं राज्य सरकार से सम्बन्धित विषयों पर एकल खिड़की द्वारा अनुमति का प्रावधान किया गया है। सेज़ विकासकर्ताओं को आयात शुल्क एवं उत्पादन शुल्क से मुक्ति, सेज़ अधि सूचना से 15 वर्षों में किन्हीं 10 वर्षों में निर्यात आय पर आयकर से मुक्ति,

आयकर अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम वैकल्पिक कर (MAT) तथा लाभांश वितरण कर से मुक्ति के साथ ही केन्द्रीय बिक्री कर एवं सेवाकर से मुक्ति की व्यवस्था की गई। उसके साथ ही सेज़ इकाइयों को आयात एवं उत्पादन शुल्क से मुक्ति, निर्यात आय पर पहले पाँच वर्ष 100% और अगले पाँच पर्ष 50% मुक्ति के साथ आयकर में न्यूनतम वैयक्तिक कर से मुक्ति, केन्द्रीय बिक्री कर, सेवा कर एवं राज्य बिक्री कर से भी मुक्ति का प्रावधान किया गया है।

सेज़ से लाभपूर्ण सम्भावनायें

देश में विशेष आर्थिक ज़ोन की योजना की संकल्पना आधुनिक तकनीकों के आधार पर आधुनिक, परिष्कृत एवं निर्यात उन्मुख उत्पादों की इकाइयों के द्वारा आर्थिक विकास की दर एवं स्तर में तीव्र वृद्धि की महत्वाकांक्षा के रूप में की गई है। इसकी पृष्ठभूमि में चीन के सेज़ों की प्रगति एवं योगदान की स्थिति भी निहित है। वास्तव में सेज़ व्यवस्था में कर व्यवस्था से मुक्ति, नियन्त्रणों का सरलीकरण, निर्णयों का एकीकरण ऐसी व्यवस्थायें हैं जो औद्योगिक इकाइयों की स्थापना को प्रेरणा देती हैं। इन ज़ोन्स में संरचनात्मक सुविधाओं जैसे सड़क, विद्युत, संचार इत्यादि को प्राथमिकता के आधार पर विकसित किया जाता है। सेज की संकल्पना में जहाँ एक ओर यह आशा रखी गई थी कि इन क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग प्रोत्साहित होगा वहीं गैर प्रवासी भारतीय भी इन क्षेत्रों की सुविधाओं के आधार पर अपने देश में आर्थिक विकास के लिये विनियोग करने के लिये प्रेरित होंगें। सेज़ में कार्यशील इकाइयों के उत्पादों से जहाँ एक ओर निर्यात प्रोत्साहन के लक्ष्य पूरे होंगे वहीं दूसरी ओर तकनीकी, इलैक्ट्रोनिक एवं आई.टी. उत्पादों के आयातों में महत्वपूर्ण कमी आयेगी। इन क्षेत्रों में कर मुक्ति और रियायतों के सन्दर्भ में कर आगम में कमी का तर्क रखा जाता है। लेकिन इन क्षेत्रों के विकास से रोज़गार में वृद्धि तथा क्रय शक्ति में वृद्धि से अप्रत्यक्ष करों के आगम में वृद्धि से क्षतिपूर्ति हो जायेगी।

सेज़ की समस्यायें

यह ठीक है कि सेज़ की संकल्पना तीव्र एवं आधुनिक औद्योगिक विकास के परिप्रेक्ष्य में की गई है, लेकिन यदि स्वार्थपूर्ण निहित हितों के आधार पर कार्य होता है तो विभिन्न समस्यायें उत्पन्न होती हैं। 'सेज़' संकल्पना में सबसे विवादपूर्ण समस्या भूमि अधिग्रहण की है। वास्तव में

जितनी तेज़ी से सेज़ प्रस्ताव प्रस्तुत और पारित हुये उसका मूल कारण यह था कि निजी क्षेत्र द्वारा इन ज़ोन्स को 'करमुक्त स्वर्ग' के रूप में अवलोकित किया गया। भूमि अधिग्रहण की सुविधा के कारण इन ज़ोन्स के प्रस्तावों में अनेक ऐसे पक्ष भी शामिल हो गये जिन्होंने इन क्षेत्रों के विकास को औद्योगिक विकास की परियोजना के स्थान पर भूमि भवन (real estate) व्यवस्था के रूप में देखा। अनेक स्थानों पर राज्य सरकार भी भूमि उपलब्ध कराने में सुविधा प्रदान करने के स्थान पर स्वयं सक्रिय भागीदार बन गयी तथा यह धारणा बन गयी कि सेज का संकल्प अनेक दशाओं में 'भूमि घोटाला' का आधार बन गया। सामान्यत: यह आशा की जाती है कि किसी सेज के पूरे क्षेत्र में 10%से अधिक भाग उर्वरा कृषि भूमि का नहीं होना चाहिये लेकिन 'सिंगूर' एवं नंदीग्राम में यह 50% से भी अधिक हो गया।

यह ठीक है कि सेज़ विकास के लिये उचित आकार का भूमि क्षेत्र होना चाहिये और इसी दृष्टि से सरकारी नियमों में विभिन्न राज्यों में और विभिन्न प्रकार के सेज़ के लिये न्यूनतम आकार भी निर्धारित किया गया है। अधिग्रहण में भूमि मूल्य निर्धारित करने की भी महत्वपूर्ण समस्या रही है लेकिन इस सम्बन्ध में अब स्थिति स्पष्ट कर दी गयी है कि सेज़ विकासकर्त्ता द्वारा भूमि विक्रेताओं से प्रत्यक्ष वार्ता करके बाज़ार मूल्य पर भूमि क्रय करने की व्यवस्था करनी होगी। यह संतोष का विषय है कि केन्द्रीय सरकार ने सेज़ के सम्बन्ध में जो नवीन नीति घोषित की है वह भूमि अधिग्रहण से सम्बन्धित समस्याओं को सीमित करने में सहयोगी बन सकती है। इस नीति में कहा गया है कि यदि सेज़ के निजी विकासकर्ता ने 70% क्षेत्र की व्यवस्था कर ली है तो शेष 30% क्षेत्र सरकार अधिग्रहीत कर सकती है। उसके साथ ही भूमि के बदले भूमि में क्षतिपूर्ति, प्रभावित परिवारों को रोजगार में प्राथमिकता, भूमि मूल्य का 20% तक भाग समता अंशो में दिये जाने, प्रभावित परिवारों के बच्चों को शिक्षा छात्रवृति, ठेकों में प्राथमिकता, गृहहीन व्यक्तियों के लिये मकान की व्यवस्था, प्रभावित परिवारों में 50 वर्ष से अधिक आयु के एवं विकलांग, विधवा या निराश्रित व्यक्तियों को पेन्शन सुविधाएँ उपलब्ध कराने का निर्देश दिया गया है।

सेज़ के लिये भूमि उपलब्ध कराने के लिये एक यह दृष्टिकोण भी विकसित हुआ है कि उपजाऊ कृषि भूमि का अधिग्रहण करने के स्थान पर बीमार औद्योगिक इकाइयों की भूमि इस कार्य के लिये प्रयुक्त की जा सकती है। वर्तमान समय में निजी क्षेत्र की 1254 बीमार औद्योगिक इकाइयों के समापन के प्रकरण विभिन्न उच्च न्यायालयों में विचाराधीन हैं। यही स्थिति केन्द्रीय सरकार के 31 और राज्य सरकारों के 4 प्रतिष्ठानों की है। यदि इन सभी इकाइयों की भूमि प्रयोग करने की सुविधा सेज़ को मिल जाये तो देश भर में महत्वपूर्ण स्थानों पर प्राइम भूमि उपलब्ध हो सकेगी तथा बीमार औद्योगिक इकाइयों की वित्तीय समस्या भी कम होगी।

यह उल्लेखनीय है कि भारत में भूमि की कमी नहीं है। भारत के 32,87,263 वर्ग किलो मीटर क्षेत्रफल में से लगभग 16,20,388 वर्ग किलो मीटर कृषि भूमि है, जबकि औपचारिक रूप से अनुमोदित 395 विशेष आर्थिक ज़ोनों के लिये 500 से 550 वर्ग किलो मीटर भूमि की आवश्यकता होगी। अत: समस्या भूमि की नहीं वरन् भूमि के ऐसे विवेकपूर्ण अधिग्रहण की है जिससे कृषकों तथा सेज़ के हितों के मध्य उचित सामंजस्य रखा जा सके।

यह भी महत्वपूर्ण है कि सेज़ प्रस्तावों में निजी प्रवर्तकों का मन्तव्य पारदर्शी होना चाहिये। भूमि भवन व्यवसायों में कार्य करने वाले अनेक प्रवर्तकों ने 3 सेज़ प्रस्ताव भी रखे हैं। यदि वे इसमें योगदान देना चाहते हैं तो नि:सन्देह स्वागत योग्य है लेकिन उसका प्रयोग उन्हें अपने परम्परागत व्यवसाय को बढ़ाने के लिये नहीं करना चाहिये। इसीलिये सेज़ क्षेत्र में आवासीय प्रखण्ड उन्हीं व्यक्तियों को आवंटित किये जाने चाहियें जो उद्यमी या कर्मचारी के रूप में सेज़ की आर्थिक क्रियाओं में संलग्न हो।

सेज़ की सामाजिक संरचनात्मक व्यवस्थाओं में यह ध्यान भी रखना होगा कि उनमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अस्पताल, शिक्षा संस्थान एवं मनोरंजन केन्द्र हों जिससे अप्रवासी भारतीयों, विशेषकर तकनीशियनों को अपने देश के आर्थिक विकास में सक्रिय भूमिका के लिये आकर्षित किया जा सके। वास्तविकता यह है कि सेज़ का संकल्प न केवल उद्योगों एवं सेवाओं में कुशल मानव शक्ति के लिये रोज़गार के अधिकाधिक अवसरों का सृजन करेगा, वरन् भविष्य में तीव्र विकास को भी गति देगा। लेकिन यह सुनिश्चित् करना होगा कि निहित स्वार्थों की पूर्ति के स्थान पर राष्ट्र हित ही सर्वोपारि है इस भावना से कार्य हो। विशेष आर्थिक क्षेत्रों को आधुनिक भारत के आधुनिक विकास मन्दिरों के रूप में विकसित करना होगा। ●

–लेखक बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यलय में
डीन, फैकल्टी ऑफ़ कामर्स हैं।

शिक्षकों को आदर्श बनना चाहिये

❑ **डॉ॰ ए.पी.जे. अब्दुल कलाम**

देश को ऐसे अध्यापक चाहिएँ, जो पढ़ाने के साथ ही बच्चों में नैतिक गुणों का विकास कर सकें। हम अक्सर कृतज्ञता के साथ महान शिक्षा शास्त्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन को याद करते हैं, जिनका सपना था, 'देश के शिक्षकों के पास सर्वश्रेष्ठ विभाग हो।' पहले शिक्षक के रूप में मैं अपने पिता जनाब अवुल पाकिर जैनुल आबदीन की चर्चा करने जा रहा हूँ।

जब मैं बच्चा था, तो उन्होंने मुझे एक बड़ी सीख दी। यह देश की आज़ादी के तत्काल बाद की बात है। उस वक्त रामेश्वरम् में पंचायत बोर्ड का चुनाव सम्पन्न हुआ था। मेरे पिता पंचायत बोर्ड के सदस्य निर्वाचित हुए और उसी दिन उन्हें रामेश्वरम् पंचायत बोर्ड का अध्यक्ष चुना गया।

मैं आपको उनके पंचायत बोर्ड का अध्यक्ष चुने जाने के दिन का एक वाक्या सुनाना चाहता हूँ। तब मैं स्कूल में पढ़ता था। उस दिन मैं अपना पाठ ज़ोर-ज़ोर से पढ़ रहा था। मुझे दरवाज़े पर किसी की दस्तक सुनाई पड़ी। एक व्यक्ति ने दरवाज़ा खोला और अंदर आकर मुझसे पूछा कि तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं? मैंने उन्हें बताया कि पिताजी शाम की नमाज़ अदा करने गए हैं। यह सुनकर उसने मुझसे कहा कि वह मेरे पिताजी के लिए कुछ लेकर आया है, क्या वह उसे वहां छोड़ सकता है? मैंने उस सज्जन को सामान खाट पर रखकर जाने को कहा। उसके बाद मैं अपनी पढ़ाई में मशगूल हो गया।

इसी बीच पिताजी कमरे में आए और उनकी निगाह खाट पर रखे सामान पर पड़ी। उन्होंने मुझसे पूछा, 'यह क्या है? इसे कौन दे गया?' मैंने उन्हें बताया, 'कोई आपके लिए छोड़ गया है।' उन्होंने पैकेट खोला, तो उसके अंदर से एक कीमती धोती, अंगवस्त्रम, कुछ फल और मिठाइयां निकलीं। उपहार देखकर वह बहुत क्षुब्ध थे। मैंने पहली बार उन्हें उस हद तक नाराज़ देखा था और पहली बार उन्होंने मुझे पीट दिया था।

फिर पिताजी मेरे करीब आए और प्यार से मेरे कंधे को छूते हुए कहा कि मेरी अनुमति के बगैर कभी किसी का उपहार स्वीकार नहीं करना। फिर उन्होंने मुझे बताया कि ''उपहार के साथ हमेशा कुछ मतलब होते हैं और यह खतरनाक चीज़ है। ठीक वैसे ही, जैसे सांप को छुओ और बदले में विष पाओ।''

यह सीख हमेशा मेरे दिमाग में कायम रही, बल्कि आज सत्तर वर्ष की आयु पार करने के बाद भी बनी हुई है। जब मैं अपने दूसरे शिक्षक के बारे में सोचता हूँ, तो मुझे अपने बचपन के दिन याद आते हैं तब मैं कक्षा आठ में पढ़ता था और मेरी आयु 13 वर्ष थी।

मेरे एक शिक्षक थे, श्री शिव सुब्रमण्य अय्यर। हमारे स्कूल के सबसे अच्छे शिक्षकों में एक। हम सभी को उनकी कक्षा में हाज़िर रहना अच्छा लगता था। एक दिन वह चिड़ियों की उड़ान के बारे में पढ़ा रहे थे।

उन्होंने ब्लैकबोर्ड पर चिड़िया की तस्वीर बनाई। उसके डैने, उसकी पूंछ और शरीर के ढ़ाँचे के साथ सिर भी बनाया। फिर उन्होंने ब्याख्या की कि किस तरह चिड़िया उड़ान भरती है। लगभग पच्चीस मिनट के व्याख्यान में उन्होंने चिड़िया की उड़ान से सम्बन्धित तमाम जानकारियां दीं।

कक्षा के अंत में उन्होंने हमसे पूछा कि हमने चिड़िया के उड़ने के बारे में समझा या नहीं। मेरे साथ अनेक छात्रों ने कहा कि वे नहीं समझ पाए। हमारे जवाब से श्री अय्यर क्षुब्ध नहीं हुए, क्योंकि वह एक प्रतिबद्ध शिक्षक थे। उस शाम पूरी कक्षा रामेश्वरम् के समुद्र तट पर पहुँची। समुद्र की लहरें रेत के टीलों से टकराकर लौट जाती थीं। उस सुहानी शाम का हमने जमकर लुत्फ उठाया। मधुर सुरों में चहचहाती चिड़ियां उड़ रही थीं। हमारे अध्यापक ने 10-20 के झुण्ड में विचरण कर रहे समुद्री पक्षियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया।

किसी खास उद्देश्य के साथ बड़े ही विलक्षण तरीके से समूहबद्ध उड़ते पक्षियों को हमने देखा और हम आश्चर्यचकित हुए बिना न रह सके। उन्होंने हमें पक्षियों के पंखों के साथ-साथ उनके पिछले हिस्से और ऐंठी हुई पूंछ की ओर देखने को कहा।

हमने गौर किया कि उस मुद्रा में पक्षी अपनी मर्ज़ी के मुताबिक दिशा में उड़ रहे हैं। तब उन्होंने हमसे प्रश्न किया, आखिर इंजन कहां है और उन्हें

ऊर्जा कहां से मिल रही है? पक्षी खुद अपने जीवन से ऊर्जा व अपनी इच्छाशक्ति से प्रेरणा ग्रहण करता है।' ये सारी बातें पंद्रह मिनट में ही हमें समझा दी गईं। उस व्यावहारिक प्रयोग से हमें गति और बल से सम्बंधित भौतिकी अच्छी तरह से समझ में आ गई।

कितनी अच्छी बात थी। हमारे टीचर एक महान शिक्षक थे। वह हमें सैद्धान्तिक पाठ पढ़ाते और प्रयोग के तौर पर प्रकृति में विद्यमान कुछ उदाहरण हमारे सामने रखते। यही वास्तविक क्षिक्षा है। मुझे उम्मीद है कि स्कूल-कॉलेजों के अध्यापक भी इस उदाहरण से प्रेरणा लेकर शिक्षण की ऐसी विधियां अपनाएंगे।

वह पाठ मेरे लिए सिर्फ़ इस संदर्भ में नहीं था कि एक पक्षी कैसे उड़ता है, बल्कि पक्षी का उड़ना मुझे जीवन का मकसद दे गया। उस शाम के बाद मेरे मन में एक तीव्र इच्छा जागी कि भविष्य में मैं उड़ान और उड़ने से जुड़े सिद्धान्तों का ही अध्ययन करूंगा। मैं यह वाक्या इसलिए बता रहा हूँ, क्योंकि मेरे अध्यापक की शिक्षा और उस शाम ने मेरा भविष्य तय कर दिया।

फिर एक शाम कक्षा समाप्त होने के बाद मैंने उनसे पूछा, ''सर, कृपया आप मेरा मार्गदर्शन करें कि उड़ान सम्बन्धी शिक्षा में मैं आगे कैसे बढ़ूँ?'' बड़े ही धीरज के साथ उन्होंने मुझे समझाया कि मैं पहले आठवीं की अपनी पढ़ाई पूरी करूं, हाई स्कूल में जाऊं और उसके बाद मुझे इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिला लेना होगा, जिसके बाद में उड़ान सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करने का अपना सपना पूरा कर सकता हूँ।

उनकी यह सलाह और पक्षियों को उड़ते देखने के मेरे अनुभव ने सचमुच मुझे जीवन का उद्देश्य दिया और मेरे भविष्य का लक्ष्य निर्धारित कर दिया। जब मैंने कॉलेज में प्रवेश किया तो भौतिकी को मैंने अपना विषय चुना। जब मैं मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी में गया, तो मैंने ऐरोनॉटिक (विमान शास्त्र) इंजीनियरिंग की पढ़ाई की।

उसके बाद मेरी जिंदगी एक रॉकेट इंजीनियर, एरोस्पेस इंजीनियर (हवाई जहाज, अंतरिक्ष यान, मिसाइल आदि बनाने में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी) में तब्दील हो गई। शिक्षक द्वारा पढ़ाया गया वह प्रत्यक्ष उदाहरण एवं उस वाक्ये ने मेरा कार्य क्षेत्र तय कर दिया। एक छात्र (या छात्रा) 12वीं तक की अपनी पढ़ाई के दौरान 25000 घंटे स्कूल में व्यतीत करता है और उसका जीवन अपने शिक्षकों और स्कूल के माहौल से ज़्यादा प्रभावित होता है।

इसलिए स्कूलों में बेहतर शिक्षक होने चाहिएँ, जिनमें पढ़ाने की योग्यता के साथ-साथ कुछ और गुण भी हों। मसलन, पढ़ाने में उन्हें खास दिलचस्पी हो और वे विद्यार्थियों में नैतिक गुणों का भी विकास कर सकें।

शिक्षक ऐसे हों, जो समग्रता में बच्चों के आदर्श बन सकें और उन्हें भविष्य के लिए एक दृष्टि, एक लक्ष्य दे सकें। अभिभावक, शिक्षक और विद्यार्थी, हम सब चाहें जो भी हों, सभी मानव इतिहास के पन्नों में एक और पन्ना जोड़ते हैं। ''मैं महसूस करता हूँ कि मेरा अनुभव मानव जीवन में एक छोटे से बिन्दु की तरह है, लेकिन उस बिन्दु का अपना जीवन है, अपना प्रकाश है।'' आओ, हम प्रयत्न करें कि यह प्रकाश बहुत से और दीपकों को प्रकाशमान कर सके। ●

लेखक भारत के पूर्व राष्ट्रपति हैं।

काल पर विजय

एक बार धर्मराज युधिष्ठिर के पास कोई निर्धन ब्राह्मण याचना करने आया। उस समय वे राजकाज में व्यस्त थे। उन्होंने नम्रतापूर्वक ब्राह्मण से कहा-''ब्रह्मदेव! आप कल पधारने की कृपा करें, आपको अभीष्ट वस्तु प्रदान की जायेगी''। ब्राह्मण चला गया। उसके जाते ही भीमसेन उठे और राजप्रसाद के मुख्य द्वार पर आकर ज़ोर-ज़ोर से दुन्दुभी बजाने लगे। उन्होंने सेवकों को भी मंगलवाद्य बजाने की आज्ञा दे दी।

यह आवाज़ जब राजसभा में पहुँची तो वहाँ उपस्थित सभी लोग चौंक पड़े और एक दूसरे का मुँह देखने लगे। किसी को कुछ समझ में नहीं आया। युधिष्ठिर ने चकित होकर एक सेवक को उस कोलाहल का कारण पता लगाने के लिये भेजी। सेवक लौटकर बोला-''महाराज! ये वाद्य भीमसेन के आदेश से बजाये जा रहे हैं। मैंने उन्हें भी दुन्दुभी बजाते देखा है।'' युधिष्ठिर ने भीमसेन को बुलवाया और थोड़ा अप्रसन्न होकर पूछा-क्या बात है भीम, यह सब क्या हो रहा है?'

भीम ने हँसकर कहा-''संभव है, तभी तो आपने दान जैसे पुण्य कार्य को कल पर टाल दिया है। तीनों लोकों में प्रसिद्ध है कि आपके मुँह से हँसी

.....शेष पृष्ठ 51 पर

चेतना के द्वारपाल हैं प्रश्न

❑ रमेश देव

इटली देश के एक पहाड़ी गाँव बारवियाना के कुछ ऐसे लड़कों को एक पादरी ने एकत्रित किया जो स्कूल से निकाल दिए गए थे। उन बच्चों की उम्र आठ बरस से पन्द्रह बरस के बीच थी। इन लड़कों से पादरी ने कहा कि वे स्कूल से क्यों निकाले गए और उनके स्कूल को लेकर क्या अनुभव हैं, वे लिखें। बच्चों ने जब लिखना शुरू किया तो पहला प्रश्न था, ''गुरुजी, आप ही बताइए कि स्कूल कौन है?'' गुरुजी जब बच्चों के चेहरे देखने लगे तो बच्चों ने जवाब दिया हम ही तो स्कूल हैं। हमें ही तो पढ़ाने की तनख्वाह सरकार आपको देती है। फिर आप हमें पढ़ाते क्यों नहीं? हमें स्कूल से निकाल क्यों दिया।

बच्चों का कुसूर यह था कि वे शिक्षक द्वारा बनाए गए पाठ्यक्रम से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि हमारी टीचर यह भी नहीं जानतीं कि हमें कैसा पाठ्यक्रम चाहिए। हम तो पहाड़ के बच्चे हैं, मजदूर बच्चे हैं। लकड़ी बीनते हैं, मेहनत करते हैं। मगर हमारी टीचर पाठ्यक्रम में हमारे लिए शारीरिक शिक्षा का विषय रखती हैं। अरे यह विषय तो उन लोगों के लिए होना चाहिए जो कारों से स्कूल आते हैं और लिफ्ट से स्कूल भवन में चढ़ते हैं। हम तो दिन भर मेहनत करते हैं, हमारे लिए शारीरिक शिक्षा का क्या मतलब?

बच्चों ने यह भी कहा कि शिक्षक क्या है? और उसका उत्तर भी उन्होंने ही दिया। उनका ऐसा मत था कि स्कूल अपने बच्चों से प्यार नहीं करता। शिक्षक अपने बच्चों से प्यार नहीं करते। इसलिए बच्चों ने कहा कि वेश्या, पादरी और शिक्षक एक जैसे होते हैं क्योंकि उनके पास किसी आनेवाले के लिए कोई आत्मीय खुशी नहीं होती और जानेवाले के प्रति कोई ग़म या दु:ख नहीं होता। इतने साहसी प्रश्न पूछकर इन बच्चों ने एक प्रकार से पूरे

शिक्षाशास्त्र को ही चुनौती दे डाली थी। इसका तात्पर्य यह है कि अगर किसी भी समाज या जन को प्रश्न करना आ गया तो वह समाज निश्चित् ही शिक्षा से एक प्रश्नवान और चेतनावान समाज बन सकता है।

प्रसिद्ध यूनानी दर्शनिक सुकरात ग्रीस में घूम-घूमकर लोगों से प्रश्नोत्तर करते रहते थे। उनके प्रश्न सुन-सुनकर लोगों को स्वयं अपने बारे में, अपने राजा और राज्य के बारे में, अपने अधिकारों आदि के बारे में कई बातें मालूम होती थीं और कुछ बातें वे स्वयं भी मालूम करने लगते थे। यह देखकर वहाँ की राज व्यवस्था को यह डर पैदा हो गया कि कहीं सुकरात जनता को भड़का तो नहीं रहे हैं। राजा ने उन्हें जेल में डाल दिया और आगे चलकर विद्रोह के मामले में उन्हें ज़हर पीकर मौत को गले लगाने की सज़ा दे दी। सुकरात के शिष्यों को बड़ा दु:ख हुआ। राजा ने सुकरात से पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया और आप अगर यह प्रश्न पूछना बंद कर देंगे तो आपकी सज़ा माफ़ कर दी जाएगी। सुकरात ने कहा कि मुझे अपनी मौत का कोई गम नहीं है। मुझे तो इस बात का संतोष है कि मैंने अपनी जनता को प्रश्न करना सिखा दिया और जिस कौम के पास प्रश्न करने का साहस आ जाता है, उसे गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता।

प्रश्नों का संसार हमारे पुराणों में तो इस कदर है कि एक उपनिषद का नाम ही प्रश्नोपनिषद है। एक बार एक ऋषि के आश्रम में शिष्यों के बीच बहस हो रही थी। विषय था कि आकाश महान है या पृथ्वी। अधिकांश छात्रों का मत था कि आकाश ही महान है। उनका तर्क था कि वह एक समूचा ब्रह्माण्ड है और पृथ्वी तो उसका एक ग्रह मात्र है। उनका यह भी कहना था कि आकाश हमें चाँद, सूरज, ध्वनि, पानी सब कुछ देता है। इसलिए आकाश के ऊँचा या महान कौन हो सकता है। इसी बीच ऋषि की एक छोटी लड़की बाहर आई और बोली-नहीं आचार्य, महान तो पृथ्वी ही है। उसने शिष्यों के तर्क का जवाब दिया कि अच्छा आकाश को छूकर बताओ। आकाश में चलकर बताओ। आकाश में खेती करके, पेड़ पौधे उगाकर बताओ। यह सुनकर ऋषि भी दंग रह गए और उन्होंने कहा कि सच है कि जिस पृथ्वी से हमें जीवन मिलता है, वह पृथ्वी ही महान् है। वह तो हमारी माता है और माता से महान् कौन हो सकता है। यह सुनकर सभी शिष्य लड़की की बातों पर आश्चर्य करने लगे और सोचने लगे इसने तो आश्रम में शिक्षा ग्रहण की

ही नहीं फिर यह ज्ञान इसे कैसे हुआ। ऋषि ने उसे पूछा तो लड़की ने कहा जब आप अपने शिष्यों को पढ़ाते हैं तो मैं सुनती रहती हूँ। उससे मुझमें यह प्रश्न करने की ताकत पैदा हुई है। ऋषि गद्‌गद हो गए और उन्होंने उस लड़की को अपने आश्रम की आचार्या नियुक्त कर दिया। **संसार में पहली लड़की थी जिसे केवल 13 साल की उम्र में आचार्य बना दिया गया था। वह लड़की थी गार्गी।**

इन उदाहरणों से यह साबित होता है **शिक्षा वह है जो साहस दे, विश्वास और आस्था दे, हुनर और ताकत दे।** प्रश्न उत्पन्न होते हैं जिज्ञासा से। यदि आप स्कूल में पहले दिन जाकर यह पूछें कि यह स्कूल क्या है, क्यों है और शिक्षक हमें क्या पढ़ाते हैं तो फिर आपके मन में कई और प्रश्न पैदा होंगे। आप पूछ सकते हैं यह ब्लैकबोर्ड क्यों है? ये पुस्तकें हमें क्या सिखाती हैं? हमारा पाठ्यक्रम हमें क्यों नहीं बनाने दिया जाता। हम अपने शिक्षक स्वयं क्यों नहीं हो सकते।

अगर स्कूल में टाट-पट्टी है तो उसका क्या मतलब है। यह बात एक बार पूछी गई थी शिक्षकों से। किसी ने जब ठीक से जवाब नहीं दिया तो लेखक को कहना पड़ा कि टापट्टी एक प्रकार से एक व्यवस्था है। इससे बच्चे पंक्तिबद्ध होकर अपने आप बैठना सीख जाते हैं। आज पंक्तिबद्ध कोई एकमात्र उदाहरण नहीं है। अब तो समूहों में अलग-अलग बैठकर सीखा जा सकता है। अनावश्यक अनुशासन भी सीखने में बाधक होता है। सीखने की प्रक्रिया में बैठना, खड़े होना, खेलना भी महत्त्वपूर्ण है। जब बच्चों को अनावश्यक अनुशासन से बांधा जाता है तो उनमें सीखने के प्रति विरोध पैदा होता है जिसे अंग्रेजी में 'रेज़िस्टेंस टु लर्निंग' कहा जाता है। इसलिए शिक्षक को अपने शिक्षाविदों और प्रशिक्षकों से यह पूछना चाहिए कि सीखने में अनुशासन भी अवरोध क्यों और कैसे बनता है? अनुशासन कहाँ और कितना चाहिये और कहाँ अनावश्यक अनुशासन न हो।

शिक्षा चाहे स्कूल, कॉलेज में हो या प्रशिक्षण संस्थाओं में, हमारे देश में बच्चों और शिक्षकों को गूंगा रखने की शिक्षा दी जाती है जिसे पाउले फ्रेरे, मौन या 'सन्नाटे का शिक्षाशास्त्र' कहते थे। शायद स्कूलों को बेजान देखकर और प्रश्न या जिज्ञासा रहित देखकर ही इवान इलिच ने स्कूल भंग कर देने की बात सोची थी फिर चाहे वह स्कूल आम शिक्षा के स्कूल जैसा हो या

हमारे मानस में बसा विचार का स्कूल।

राष्ट्रपति अब्दुल कलाम कहते हैं कि हमेशा ऊँचा उद्देश्य सामने रखो और छोटा उद्देश्य रखना एक प्रकार का अपराध है। गांधी जी की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में प्रश्न ही प्रश्न हैं और गांधी जी के उत्तर हैं। महान् दर्शनिक जे. कृष्णमूर्ति की अधिकांश पुस्तकें प्रश्नोत्तरों में ही हैं। जान होल्ट की किताब 'बच्चे फ़ेल कैसे होते हैं में एक सोलह महीने की बच्ची की जिज्ञासा और प्रयत्नों की ऐसी शृंखला है कि आगे चलकर पूरी शिक्षा ही जिज्ञासा और कौतूहल से भर जाती है। हर शिक्षक अपने प्रश्न स्वयं क्यों नहीं खोजे? हर बच्ची या बच्चा स्कूल में आते वक्त बस्ते में किताबों का बोझ लेकर आने के बजाए प्रश्नों के खेल लेकर क्यों न आए? शिक्षक जब प्रशिक्षण में जाते हैं तो वे यह क्यों नहीं पूछते कि हमारे उन बच्चों का शिक्षाशास्त्र क्या होगा जो प्रश्न ही प्रश्न करते हैं? हमारे उस प्रौढ़ समाज का शिक्षाशास्त्र क्या होगा जिनको प्रश्न करना आ गया है?

प्रश्न करना उतना सरल नहीं है जितना कहा जाता है। प्रश्न सही हो, उसकी भाषा सही हो, वह स्पष्ट हो और उसे वाक्य बनाकर कहा जा सके यह भी सीखने की बात है। कई अध्यापक स्कूल से कॉलेज तक पहुँचने पर एक दी गई स्थिति में चार प्रश्न भी सही ढ़ंग से नहीं बना पाते। इसलिए प्रशिक्षण में सही प्रश्न बनाने का अभ्यास भी कराया जाना चाहिए। कोई प्रशिक्षण जब शिक्षक को यह बताता ही नहीं कि पाठ्यक्रम कैसे बनाया जाता है, पुस्तकें बनाने का क्या तरीका है तो फिर शिक्षक कभी यह जान ही नहीं पाते कि पाठ्यक्रम क्या है, क्यों है और पुस्तकें पाठ्यक्रम पर ही क्यों बनती हैं?

शिक्षा में प्रश्न एक अनिवार्यता है। जो शिक्षक प्रश्न बनाना या करना सीख जाते हैं वे उत्तर खोजना भी सीख लेते हैं और वैसा ही अपने बच्चों को सिखा भी सकते हैं। अधिकांश शिक्षा महाविद्यालयों और प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रश्न करने पर पाबंदी होती है। इस कारण पूरे प्रशिक्षण काल में शिक्षक डरे-डरे रहते हैं और कई बार अधिक प्रश्न करनेवाले शिक्षक को प्रशिक्षण में प्रश्न पूछने का दंड श्रेणी गंवाकर या फ़ेल होकर चुकाना पड़ता है। प्रश्न तो एक शब्द का भी हो सकता है और कभी एक प्रश्नवाचक चिंह भी पूरे प्रश्न का प्रतीक बन सकता है। प्रश्न खीज की ओर ले जाते हैं, चुनौती देते

हैं और साहसी बनाते हैं। प्रश्न तो चेतना के द्वारपाल हैं।

आजकल तो प्रश्न बैंक भी बनाए जाने लगे हैं। प्रश्न बैंक एक प्रकार का बैंकिंग सिस्टम है जिसमें शिक्षक और बच्चे मिलकर प्रश्न जमा करें ओर उन्हें जब जैसे प्रश्नों की ज़रूरत हो वे विषयवार वे प्रश्न उसमें से बैंक के पैसों के समान ड्रॉ कर लें। मगर इन प्रश्न बैंकों को भी हमारी व्यापार बुद्धिऔर परीक्षातंत्र ने मिलकर एक प्रकार की कुंजी बना दिया और प्रश्नपत्रों को परीक्षा के लिए बनाने का इन्हें एक सरल आधार या उपाय मान लिया गया

आप अगर प्रश्न करना सीख जाते हैं तो किसी लेखक से साक्षात्कार ले सकते हैं; किसी भी बड़े नेता, अभिनेता, वैज्ञानिक, कलाकार, विशेषज्ञ आदि से सवाल कर सकते हैं और उनसे वे बातें जान सकते है जो आपको न स्कूल या प्रशिक्षण संस्थाएँ बता सकती हैं और न ही शिक्षक या पुस्तक।

युधिष्ठिर के जब सारे भाई एक तालाब पर पानी पीते वक्त मर गए तो युधिष्ठिर उन्हें खोजने निकले। वे जब तालाब पर पहुँचे तो उन्हें अपने भाइयों के शव दिखाई दिए। जब वे शवों को उठाने को हुए तो आकाशवाणी हुई और एक यक्ष ने कहा कि पहले आपको मेरे प्रश्नों के उत्तर देने होंगे तब आप इन शवों को ले जा सकते हैं। युधिष्ठिर ने एक-एक करके सब प्रश्नों के सही जवाब दे डाले।

उनके पास इतना ज्ञान स्वयं प्रश्न करके हो गया था कि वे हर प्रश्न का सही उत्तर बता सके। इससे यक्ष प्रसन्न हुए और पांडव ज़िन्दा हो उठे। यह कथा बताती है प्रश्न वह ताकत है कि अगर वह सही ढंग से पूछे जाएँ तो मुर्दा व्यक्ति भी ज़िन्दा हो सकते हैं।

इसलिए ज़रूरत है कि आज हमारी शिक्षा में सवालों का शिक्षाशास्त्र पैदा हो। सवाल करने वाला समाज, और लोकतन्त्र का रक्षक होता है। सवाल करने वाला समाज नेता या राजा को निरंकुश नहीं बनने देता, सत्ता को नियंत्रणविहीन नहीं होने देता और ऐसे समाज की आज़ादी सुरक्षित रहती है। इसलिए आज हमें चाहिए सवालों का शिक्षाशास्त्र जिससे एक ऐसे समाज का उदय हो जो लोकतंत्र की चेतना और मनुष्य की मुक्ति का समाज हो। ●

- 276, एल.आई.जी. कटरा, भोपाल (म०प्र०)

मन की खुराक है - हँसी

❑ लाफ़्टर मास्टर जितेन कोही

शाहुमल अपने पाँच ऊँटों को साथ ले शहर जा रहा था। रास्ते में रात हो गई। गाँव के पास छोटी सी सराय देख, वो वहीं रुक गया। अपने ऊँटों को वहीं सराय के बाहर लगी सांकलों के साथ बांध दिया, पर एक ऊँट को बांधने के लिए रस्सी कम पड़ गई। शाहूमल बड़ा चिंतित हुआ, यदि ऊँट को रस्सी से खूँटे के साथ बांधा न गया तो कहीं रात में इधर-उधर न चला जाए।

सराय वाले ने उसकी चिंता देख कर कहा, ''आप कुछ न करें। बस रोज़मर्रा की तरह रस्सी बांधने का नाटक कर दें। ऊँट कहीं नहीं जाएगा।'' शाहुमल ने वही किया। ऊँट के पैर के चारों तरफ़ रोज़ की तरह रस्सी बांधने का अभिनय सा कर दिया मानो उसे खूँटे से बांध दिया हो। रात भर चिंता के मारे शाहुमल को ठीक से नींद नहीं आई। सुबह तड़के उठकर सबसे पहले बाहर निकल निगाह डाली। देखा पाँचों ऊँट चुपचाप विश्राम कर रहे थे। उसके मन को बड़ी शान्ति मिली। नित्यकर्म से निबट, सराय वाले का धन्यवाद कर उसने चारों ऊँटों की रस्सी खोली और चलने को बढ़ा। चारों ऊँट तो उठकर खड़े हो गए लेकिन पाँचवाँ ऊँट न उठा। उसने दो-चार बार हुंकारा पर पाँचवाँ ऊँट न उठा। सराय वाला सब नजारा देख रहा था, बोला, ''हुज़ूर। आपने इसकी रस्सी तो खोली ही नहीं। ये उठेगा कैसे!''

शाहुमल को बात समझ में आई। उसने तुरंत पाँचवें ऊँट की भी रस्सी खोलने का अभिनय किया। ठीक वैसे जैसे अन्य चारों ऊँटों की रस्सी खोली थी। उसके ऐसा करते ही ऊँट उठकर खड़ा हो गया। ऊँट मन की डोर से बंधा था। मन की डोर सबसे मज़बूत है। जब उसका मन ही बंध गया तो बाकी कुछ बंधे या नहीं कोई फ़र्क नहीं पड़ता। आदमी शरीर से ज़्यादा मन की ताकत से काम करता है। मन में यदि विश्वास, उमंग, उत्साह हो तो

मुश्किल काम भी आसान हो जाता है। आदमी आज चाँद पर पहुँचा, एवरेस्ट पर चढ़ा। शरीर की ताकत से नहीं मन की ताकत से। कोई बहुत डीलडौल वाला ताकतवर आदमी, डब्ल्यू-डब्ल्यू-एफ़ की कुश्ती का पहलवान तो एवरेस्ट पर नहीं चढ़ा न? एवरेस्ट पर वहीं पहुँचे जिसके मन में इतना विश्वास इतना साहस, प्रेरणा, उत्साह, उमंग, शक्ति थी। आंतरिक शक्ति में इतनी ऊर्जा है कि असंभव को भी संभव बनाया जा सकता है।

मन की इसी आंतरिक शक्ति ऊर्जा, उमंग, उत्साह के बल पर मानव ने बड़े-बड़े आविष्कार किए हैं। 'मन' हमारे मस्तिष्क का वह सूक्ष्म हिस्सा है, जिसमें भावनाओं का प्रवाह रहता है। अच्छे व बुरे भाव, सकारात्मक व नकारात्मक भाव, उत्साह-हताशा भाव, खुशी व दु:ख के भाव इत्यादि। अब सवाल ये है कि इस 'मन' की पौष्टिकता कैसे बढ़े? 'मन' का शुद्धीकरण कैसे हो? हम अपने शरीर को तो पौष्टिक और स्वादिष्ट भोजन की खुराक देते हैं। फल-दूध, हरी सब्जियाँ, विटामिन इत्यादि लेते हैं। लेकिन मन को क्या देते हैं? चिन्ताओं का सूप, परेशानियों से उपजी हताशा का जूस, ईर्ष्या-द्वेष, नफ़रत-ग्लानि और इन सबके कारण उपजी असंतुष्टि का ज़हर। मन की खुराक है, हँसी। हँसने से मन की शक्ति, ऊर्जा, उत्साह, उमंग सभी कुछ बढ़ता है। प्रसन्न रहने से एक खुशनुमा भाव उत्पन्न होता है जो मन को हल्का कर पाज़िटिव एनर्जी देता है। **हँसने से जो एक खुशनुमा एहसास उत्पन्न होता है वह हमारे शरीर में इस तरह के रस पैदा करता है जिससे तनाव बढ़ाने वाले हारमोन्स कम होते है। हँसने वाले व्यक्ति का दृष्टिकोण ही बदल जाता है।** रोते हुए व्यक्ति (मन से रोने वाले) को यदि आप फूलों के बाग में भी ले जाओ तो उसकी निगाहें फूलों पे नहीं, उनके नीचे उगे कांटो पर ही जाएँगी। उसे नीचे गिरे-पड़े हुए मुरझाए फूल ही दिखेंगे और हँसने वाला व्यक्ति वीराने में भी आनंद के अवसर ढूंढ़ लेगा।

कई बार हम किसी समारोह-कार्यक्रम में किसी व्यक्ति से मिलते हैं और कहते हैं कि मैं फलां आदमी से मिला। बड़ा हँसमुख इंसान था। मिलकर आनंद आ गया। क्योंकि हँसने वाला व्यक्ति तो हँसी बांटेगा, आनंद ही देगा। जिसके पास जो है वही तो देगा। दु:खी व्यक्ति दु:ख देगा। निराश व्यक्ति निराशा फैलाएगा।

हँसी तो इत्र के समान है। जिसे आप दूसरों पर छिड़केंगे तो उसकी सुगंध के कुछ छींटे आप तक भी ज़रूर आएंगे। यदि आप दूसरों को हँसी देगे तो आपकी जिंदगी में भी हँसी फैलती चली जाएगी। हँसी सामूहिकता का दूसरा नाम है। आप अकेले रो तो सकते हैं पर अकेले हँस नहीं सकते। हँसने के लिए आपको साथी चाहिए। अकेलापन दूर होगा तो मन पर छाया विषाद भी मिटेगा। आप प्रात: काल उठकर सबसे पहले आँखें बंद कर चेहरे पर प्रसन्नता का भाव लाऐं और मन में दोहराएँ ''आज का दिन बेहद सुन्दर और खुशगवार है।'' फिर अपने अंदर एक विश्वास भर कर आँख खोलें और ज़ोर से ठहाके लगाएँ। देखें कैसे मन में ऊर्जा और उमंग का संचार होगा।

हम अपने शरीर की मैल को तो रोज़ साबुन से रगड़-रगड़ कर निकाल देते हैं लेकिन मन की मैल। मन की मैल है-नकारात्मक भाव। ईर्ष्या-द्वेष-ग्लानि-नफ़रत सब उसी नकारात्मक भाव की प्रतिक्रिया मात्र हैं। नकारात्मक का अर्थ है-चीज़ों को नकारने का भाव। मन का शुद्धीकरण मन की सफ़ाई करनी है तो मन से तमाम नकारात्मक भावों को दूर कर, उसमें पॉज़िटिव ऊर्जा का संचार करें और इसका ज़रिया है हँसी। निर्मल-निश्छल-स्वस्थ हँसी। आपने मक्खी को देखा होगा। मक्खी मीठे पर भी बैठती है और गंदगी पर भी। इसी प्रकार हमारा मन है जिसमें अच्छे विचार भी आते हैं और बुरे विचार भी। जिस कार्य को करने की बात सोचने भर से आपके मन में उदासी का भाव जाग आता हो वह बुरा है। जिसके बारे में सोचने भर से आपके मन में प्रसन्नता एवं खुशी का संचार होता हो, वह अच्छा है। लेकिन मधुमक्खी को देखें, वो सिर्फ अच्छी चीज़ों पर बैठती है। फूलों पर, सुगंधित चीज़ों पर बैठती है। अपने मन को मक्खी से मधुमक्खी बनाएँ। ●

- 162, रामेश्वर नगर, आज़ादपुर-दिल्ली-110033

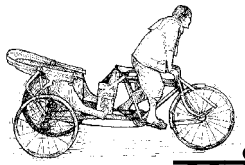

ग़रीबों की सवारी ग़रीबों का सहारा - रिक्शा

❑ राजेन्द्र कुमार

आज जब मैंने इन्द्रानगर जाने के लिए स्कूटर उठाया तो पता चला कि पेट्रोल बन्द नहीं हैं। मैं समझ गया पेट्रोल ओवर हो गया होगा। फिर भी पेट्रोल बन्द करके किक लगाने लगा किन्तु स्कूटर को स्टार्ट नहीं होना था तो नहीं हुआ। थक कर मैंने रिक्शे से जाने का निश्चय किया। अत: गेट के बाहर रैम्प पर खड़े होकर रिक्शे का इन्तजार करने लगा।

''नमस्ते साहब'', सुनकर मैं चौंक गया। देखा एक रिक्शे वाला सामने खड़ा था। ''कहाँ जायेंगे?'', उसने पूछा ''जाना तो है किन्तु तुम्हें कैसे मालूम?'' मैंने स्वाभाविक प्रश्न किया। ''हम रिक्शे वाले हैं। दिन भर यही काम करते हैं। जब किसी को रिक्शे की ज़रूरत होती है तो घर के बाहर रैम्प पर खड़े होकर इसी प्रकार कभी इधर, कभी उधर देखता है'' उसने किसी मनोवैज्ञानिक की भाँति समझाना चाहा

''इन्द्रानगर चलना है, क्या लोगे?''

''जो दे देंगे साहब''

''इसका क्या मतलब। यदि मैं कहूँ कि पाँच रुपये में चलो तो भी क्या तुम चलोगे'' मैंने तीखा सवाल किया

''बिलकुल चलूँगा साहब आइए बैठिये,'' कहकर वह रिक्शा मेरे पास ले आया।

दिन के दस बजे थे। फिर भी मुझे डर लगने लगा। इसने मुझे नमस्ते किया जो कोई रिक्शे वाला नहीं करता। फिर पाँच रुपये में लखनऊ के गोमतीनगर से इन्द्रानगर जाने के लिए तैयार हो गया जबकि साधारणत: दस रुपये में रिक्शा जाता है। फिर मैंने सोचा अधिक से अधिक दस रुपये ले लेगा। अत: मैं बैठ गया। चलते-चलते मैंने उसके व्यवहार का कारण पूछा। रिक्शे वाला बोला,

'आपने पहचाना नहीं। लगभग एक सप्ताह पहले आप गोमतीनगर के फ्लाईओर के पास आये थे। हम कई रिक्शे वाले वहीं पर थे। आपने हम लोगों से हमारे व रिक्शे के बारे में बहुत सी बातें पूछ कर एक डायरी में नोट की थीं। आप ने कहा था कि आप रिक्शे व रिक्शे वालों के बारे में कुछ लिखने जा रहे हैं। आप हम लोगों के लिए इतना कर रहें हैं तो क्या हमें आप के लिए कुछ भी नहीं करना चाहिये। आप को सम्मान तो देना ज़रूरी है।'

मैं उसकी बात सुनकर दंग रह गया। एक रिक्शे वाला इतना संवेदनशील हो सकता है, मैं सोच भी नहीं सकता था। हम इतने संवेदनहीन क्यों हो गये हैं। रोज़ रिक्शे का उपयोग करते हैं। किन्तु रिक्शेवाले के सुख दु:ख, उसकी समस्याओं के विषय में कभी नहीं सोचते। बातों-बातों में मैंने रिक्शे वाले से कुछ जानकारी और हासिल की। वह हाईस्कूल पास था। किन्तु हाईस्कूल पास करने के बाद ही उसके पिता का देहान्त हो गया। सारे परिवार का बोझ उसके ऊपर आ गया। मेहनत करके उसने भाईयों को पढ़ाया। वे नौकरी कर रहे हैं। किन्तु उसकी किस्मत में केवल रिक्शा चलाना लिखा है।

मैं सोचने लगा कम दूरी के लिए यातायात के साधनों में रिक्शा का उपयोग बहुतायत से किया जाता है। नगर या महानगर में रहने वाला कोई भी युवा या वृद्ध, स्त्री या पुरुष, धनी या निर्धन ऐसा नहीं होगा जिसने रिक्शे का उपयोग न किया हो। पत्रकार व लेखक अनेकों विषयों पर अपने विचार लिपिबद्ध करते रहते हैं। किन्तु रिक्शा व उसे चलाने वाला एक ऐसा समूह है जिसके विषय में शायद ही किसी ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

रिक्शा मूल रूप में जापानी भाषा के शब्द 'जिंरिक्शा' से बना है। 'जिं' का अर्थ है मानव, रिकी अर्थात् शक्ति। 'शा' वाहन के लिए उपयोग में आता है। इस प्रकार 'जिंरिक्शा' का अर्थ है 'मानव शक्ति से चलित वाहन।' जापानियों द्वारा सन् 1868 में रिक्शे के आविष्कार का श्रेय प्राय: इजूमी योसूके, सुजुकी टोकूजीरो एवं टाकायामा कोसूके को दिया जाता है। सन् 1870 में टोकियो सरकार ने उन्हें रिक्शे का निर्माण करके चलाने का लाइसेन्स प्रदान किया। 1872 तक जापान में ऐसे लगभग 40,000 रिक्शे चलने लगे थे। इन रिक्शों में दो पहिये पीछे होते थे तथा आगे से एक व्यक्ति दौड़ते हुए रिक्शा खींचता था। कोलकता में अभी भी ऐसे रिक्शे चल रहे हैं।

मनुष्यों द्वारा खींचकर चलाये जाने वाले रिक्शे उन्नीसवीं तथा बीसवीं

शताब्दी के आरम्भ में उपयोग में आते थे किन्तु बाद में उनका स्थान साईकल रिक्शा ने ले लिया। विश्व के अनेक देश जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, इटली, इन्डोनेशिया, सिंगापुर, मलेशिया, थाइलैन्ड, दक्षिणी अफ़्रीका, चीन, जर्मनी एवं वियतनाम आदि में भी रिक्शा उपयोग में आ रहे हैं। किन्तु इन स्थानों में रिक्शे का उपयोग मुख्य रूप से पर्यटकों के लिए किया जाता है। इन रिक्शों में पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार की सजावटें की जाती हैं।

भारत में सर्वप्रथम सन् 1880 के आसपास शिमला में रिक्शे का उपयोग प्रारम्भ हुआ। इसके लगभग बीस वर्ष बाद कोलकाता में रिक्शे प्रारम्भ हुए। अब तो भारत के सभी नगरों एवं जहाँ सड़के बन गई हैं ऐसे ग्रामों में रिक्शे का उपयोग बहुतायत से किया जाता है। बड़े-बड़े नगरों में रिक्शा चालक मुख्यत: ग्रामीण होते हैं। गांवों में रोज़गार के साधनों की कमी होने के कारण प्राय: श्रमिक नगरों व महानगरों में रोज़गार की तलाश में जाते हैं। वहाँ रोज़गार न मिलने पर किराये पर रिक्शा लेकर चलाते हैं जिससे उनकी जीविका चल पाती है।

रिक्शा के सम्बन्ध में कुछ तथ्य

- ★ सम्पूर्ण भारतवर्ष में 70 लाख से अधिक सवारी रिक्शा तथा 40 लाख माल रिक्शाएँ चलती हैं।
- ★ औसतन एक रिक्शा 15 से 40 तक फेरे लगाती है एवं 20 से 50 किलो मीटर की दूरी तय करती है।
- ★ ये रिक्शाएं हमारे देश की 3 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या की जीविका का साधन हैं। इस पर सरकार का कुछ भी खर्च नहीं होता।
- ★ सम्पूर्ण विश्व में 40 देशों से भी अधिक में रिक्शाओं का उपयोग किया जाता है।
- ★ बंगला देश की राजधानी ढाका में दुनिया में सबसे अधिक रिक्शाएं हैं एवं इसे रिक्शाओं का शहर कहा जाता है।

यातायात के साधनों में रिक्शा सबसे सस्ता वह प्रदूषणरहित साधन है। किन्तु वर्तमान युग में तीव्रगति वाले यातायात के साधनों की आवश्यकता है। धीमीगति के कारण रिक्शा उनका स्थान नहीं ले सकता। इसके अतिरिक्त

मुख्य सड़कों पर चलने पर रिक्शे तीव्र गति के वाहनों की गति में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अशिक्षित होने के कारण रिक्शा चालकों को यातायात के नियमों का भी ज्ञान नहीं होता। इसीलिए दिल्ली, मुम्बई आदि महानगरों में मुख्य सड़कों पर रिक्शा द्वारा यातायात प्रतिबन्धित कर दिया गया है।

इन कमियों के होते हुए भी रिक्शे में हानि की अपेक्षा लाभ आज भी अधिक है। छोटे व बड़े नगरों में आज भी ऐसी पुरानी बस्तियाँ हैं जहाँ की सड़कें बहुत कम चौड़ी हैं। इनमें निवास करने वाले लाखों लोगों को प्रतिदिन अपनी जीविका के लिए बस या ट्रेन से जाना पड़ता है। इन बस्तियों की गलियों में पहले तो आटोरिक्शा चल नहीं पाते तथा यदि जाते भी हैं तो वे पर्यावरण को बहुत अधिक दूषित करते हैं। नई कालोनियों में भी लाखों लोग निवास करते हैं। इन लोगों के लिए भी बस स्टाप व रेलवे स्टेशनों तक पहुँचने के लिए सस्ता, सुलभ व पर्यावरण को दूषित न करने वाला साधन रिक्शा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। इसके अतिरिक्त यह लाखों लोगों की जीविका का साधन भी हैं। एक पुरानी कहावत है ''जहाँ काम आवे सुई कहा करे तलवार''। उसी प्रकार जहाँ रिक्शे की आवश्यकता है वहाँ टैक्सी या बस से काम नहीं चल सकता।

रिक्शे की उपयोगिता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उनकी संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार दिल्ली में ही रिक्शों की कुल संख्या लगभग दस लाख है जिनमें से केवल 10,000 ही लाइसेन्स धारी हैं, शेष बिना लाइसेन्स के चल रहे हैं।

इस प्रकार आज के युग में भी रिक्शे के महत्व से इंकार नहीं किया जा सकता किन्तु फिर भी न तो रिक्शे की सवारी को अधिक आरामदायक बनाने के लिए सुधार का कोई प्रयत्न अभी तक किया गया और न ही रिक्शे में ही ऐसा सुधार लाया गया जिससे रिक्शा चालक को कम से कम श्रम करना पड़े। रिक्शा चालक के जीवन स्तर में भी सुधार लाने की आवश्यकता है जिससे वे अच्छी से अच्छी सेवा प्रदान कर सकें किन्तु दुर्भाग्य वश सरकार द्वारा इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया।

रिक्शों तथा रिक्शा चालकों की वर्तमान दशा का आकलन करने के लिए मेरे द्वारा लगभग 150 चालकों का सर्वेक्षण किया गया। इसमें ज्ञात हुआ कि केवल दस प्रतिशत रिक्शा चालक ही स्वयं रिक्शे के मालिक हैं। शेष किराये

पर लेकर रिक्शा चलाते है व प्रतिदिन 20 से 25 रुपये तक किराया अदा करते हैं। रिक्शे के स्वामी वही हैं जो दस वर्ष या इससे अधिक समय से रिक्शा चला रहे हैं। अधिकांश रिक्शाचालक एक कमरा किराये पर लेकर तीन या चार व्यक्ति उसी में रहते हैं व रिक्शा चलाते हैं। शायद ही कोई रिक्शा चालक अपने परिवार को अपने साथ रखता हो। एक रिक्शा चालक ने, जो लगभग बीस वर्षों से रिक्शा चला रहा था, बताया कि उसके पास स्वयम् का रिक्शा है। उसने अपना नाम रामचरण बताया तथा यह कहा कि वह सागर (मध्य प्रदेश) का निवासी है। उसने यह भी प्रयत्न किया कि रिक्शा खरीद कर किराये पर चलाये। उसने स्थानीय रूप से तीन प्रतिशत प्रतिमाह की दर से कर्ज़ भी लिया। उसने जिन लोगों को रिक्शा किराये पर चलाने के लिए दिया उनमें से एक उसका अपना भाई तथा शेष उसके परिचित विश्वस्त व्यक्ति थे। उनसे रिक्शा चोरी चले गये। शायद पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण उसके साथ यह घटना घटी व वह अपने जीवन स्तर में कोई सुधार नहीं ला सका।

अधिकांश नगरों में चलने वाले रिक्शे लगभग एक समान हैं। केवल कुछ नगरों में रिक्शा निर्माताओं ने स्थानीय आवश्यकताओं को देखते हुए कुछ परिवर्तन किये हैं। किन्तु यह भी उनमें सुधार लाने के दृष्टिकोण से नहीं किये गये। रिक्शों में धूप या पानी से बचाव की कोई व्यवस्था नहीं होती। पाइप का उपयोग करके रिक्शे को हलका बनाया जा सकता है। उसमे यदि गियर की व्यवस्था की जाये तो रिक्शा चालक कम श्रम में रिक्शे को अधिक गति प्रदान कर सकता है।

सेन्टर फ़ार रूरल डेवलपमेन्ट (सी.आर.डी.) नामक एक गैर सरकारी संस्था (एन.जी.ओ.) द्वारा गुवाहाटी में रिक्शा व रिक्शा चालकों की दशा में सुधार लाने के लिए प्रशंसनीय कार्य आरम्भ किया गया है। संस्था द्वारा रिक्शा बैंक योजना आरम्भ की गई है। उसका सदस्य होने पर रिक्शा चालकों को रिक्शा दिया जाता है तथा 25/- रु. प्रतिदिन के हिसाब से ऋण की अदायगी होती है। पूरा अदा किये जाने पर रिक्शा चालक रिक्शे का मालिक हो जाता है। रिक्शा बैंक द्वारा रिक्शा, रिक्शा चालक तथा सवारी का बीमा भी किया जाता है। इसी प्रकार की व्यवस्था यदि अन्य नगरों में भी की जा सके तो रिक्शा एक महत्वपूर्ण यातायात के साधन के रूप में विकसित हो सकता है व रिक्शा चालक भी समाज में सम्मान का स्थान प्राप्त कर सकते हैं। ●

- 2/354, विकास खंड, गोमती नगर, लखनऊ

राष्ट्र जीवन की विसंगतियाँ

❑ **विष्णु प्रकाश पांडेय**

भारत वर्ष विविध भाषा, पन्थ और परम्पराओं का देश है। आर्यों के इस देश में अनादिकाल से प्रवाहित होने वाली वैदिक संस्कृति इसकी मूल पहचान है। कालान्तर में भले ही इसकी समृद्धि को विदेशी आक्रान्ताओं ने लूटा खसोटा है, लेकिन जब-जब इन आतताइयों न इस देव-भूमि में प्रश्रय लेना चाहा तो भारत के पुत्रों ने अपनी सहिष्णुता के कारण उन्हें और उनकी संस्कृति को भी आत्मसात कर लिया। जड़-चेतन सभी में उस आदि सत्ता का वास मानने वाला भारत, सभी के लिए शान्ति की प्रार्थना करता है। सम्पूर्ण वसुधा को कुटुम्ब के रूप में देखता है और सभी के कल्याण की कामना करता है। धृति क्षमा दमोऽस्तेयं..... जैसे दस मानवीय गुणों से युक्त मानव धर्म ही जिसकी आचार संहिता हो और इस भारत-भूमि को मातृ-भूमि मानकर इसकी रक्षा के निमित्त अपना सर्वस्व अर्पण करने की भावना ही जहाँ बलवती हो, ऐसा भारत आज किंकर्त्तव्य विमूढ़ता की स्थिति में पहुँच गया है। जिस देश की राजसत्ता धर्म के दण्ड से संचालित होती थी, आज वही 'धर्म' विपरीत हो गया है। जिन विदेशी आततताइयों के प्रति हम सहिष्णु और सहदय बने रहे, आज उनके अनुयायी इस देश की संस्कृति, सम्मान और राष्ट्रीयता से विमुख होकर आपने अस्तित्व को पुनः कायम करने का सम्भ्रम पाले हुए हैं और उसके लिए वे राष्ट्र की मुख्यधारा से विलग होकर राष्ट्र विरोधी कृत्य करने से भी नहीं चूकते। ऐसा नहीं कि उसकी अनुभूति इस देश की राजसत्ता को न होती हो, लेकिन 'वोट' के मोह में धृतराष्ट्र बनी देश की राजसत्ता, उनके राष्ट्र विरोधी कृत्यों पर अंकुश लगाने क ी बजाय, उन्हें राज्याश्रय प्रदान कर, अधिक से अधिक सहूलियतें देना ही, अपना राष्ट्रीय कर्त्तव्य मान रही है।

इसी प्रकार सामाजिक स्तर पर भौतिकवाद के अंधड़ ने भारत की पारिवारिक व्यवस्था को ध्वस्त किया तो पाश्चात्यवाद की पछुआ हवाएं हमारी भाषा और संस्कृति को उड़ा ले गयीं। परिवार में दादा-दादी, चाचा-चाची, बुआ, मामा, मौसी जैसे भाव प्रवण रिश्ते ही समाप्त हो गये, जिसके कारण

भारतीय परिवार की समेकित शक्ति प्रभावित हुई और परिवार से मिलकर बनने वाली हमारी सामाजिक इकाई कमज़ोर हो गयी। व्यवहार में विदेशी भाषा (अंगेज़ी) के चलन से, निजभाषा (मातृभाषा) से पैदा होने वाला स्वत्व का बोध ही समाप्त हो गया। पाश्चात्य संस्कृति के प्रवाह से हमारे रीति-रिवाज और वेश-भूषा आदि इस कदर प्रभावित हुए हैं कि अब स्त्री-पुरुष के बीच की मर्यादा के साथ-साथ हमारी अपनी परम्पराएं भी एक-एक कर चुकने लगी हैं। भारत में जहाँ पारम्परिक रूप से मनाये जाने वाले भाई-बहिन के निश्छल और पवित्र प्रेम के प्रतीक 'रक्षाबन्धन' पर्व की मर्यादा और गरिमा, पाश्चात्यवादी माँसल प्रेम के पर्व 'वेलेन्टाइनडे' के समक्ष समाप्त होती जा रही है वहीं पाश्चात्य नव-वर्ष की निशाचरी धूम ने, नवसंवत्सर के शुभ प्रभात को धूमिल कर दिया हैं

परिवार, समाज और राष्ट्र को जीवन्त बनाने वाली इकाई व्यक्ति है, वह राष्ट्र जीवन का मूलाधार है। आज व्यक्ति का चरित्र, चिन्तन और आचरण मर्यादाच्युत हो रहा है। व्यक्ति का निर्माण करने वाली शिक्षा भी देश की राजनीति के कुचक्रों का शिकार होकर अध:पतन की ओर अग्रसर है। अब तो शिक्षा के माध्यम से देश की संस्कृति और इतिहास को ही विकृत किया जाने लगा है। शिक्षा के मूलाधार नैतिक शिक्षा (Moral Education) को स्कूली पाठ्यक्रम से लगभग निष्कासित कर दिया गया है और यौन शिक्षा (Sex Education) को स्कूली शिक्षा (प्राथमिक से उच्चमाध्यमिक स्तर तक) का अनिवार्य और महत्वपूर्ण हिस्सा बनाने की तैयारी हो रही है। वर्तमान में हमारे देश का भौतिक परिवेश और पाठ्यक्रम, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए अंग्रेजीदा नौकर देने में तो तत्पर दिखाई दे रहा है लेकिन देश के लिए आचरणवान् संस्कारित और अनुशासित युवा पीढ़ी के निर्माण में सक्षम नहीं हो पा रहा है।

सम्पूर्ण भारतीय समाज का विभिन्न पन्थों, सम्प्रदायों और जातियों के खेमों में बंट जाना, राष्ट्र जीवन की एक अन्य त्रासदी है। कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था, जब जन्म आधारित जाति व्यवस्था में परिणत हुई तो समाज में ऊँच-नीच का जातिगत भेद भाव पैदा हुआ। इसी तरह विभिन्न मत मतान्तरों के बीच पनपने वाले अनेक पन्थों, पूजा पद्धतियों और आस्थाओं के बीच का द्वन्द्व भी इस देश की एकता अखण्डता और राष्ट्रीयता को चुनौती दे करके, राष्ट्र को पंगु बनाने का कार्य कर रहा है। समुदाय विशेष की पान्थिक चेतना से, राष्ट्र चेतना कुण्ठित हो गयी है। अब पन्थ मानव समाज और राष्ट्र दोनों

से ऊपर माना जा रहा है। देश में व्याप्त आतंकवाद और चारों ओर होने वाले विप्लव के मूल में यही पान्थिक अवधारणा है।

देश की राजनैतिक, सामाजिक, शौक्षिक और पान्थिक अवधारणा में सामान्य सी दीखने वाली ये विसंगतियाँ, हमारी सांस्कृतिक और सामाजिक एकता को कितना आघात पहुँचा रही हैं, इसका अनुमान व्यक्ति की आत्मकेन्द्रित स्थिति, पारिवारिक निरीहता, अकेलेपन के बोध और विखरते सामाजिक परिवेश से लगाया जा सकता है। इन सबका समेकित प्रभाव हमारी राष्ट्रीय एकता पर भी देखने को मिलता है। आज व्यक्ति स्तर पर राष्ट्रीयता का बोध ही समाप्त हो गया है। अकेलेपन के भाव बोध से व्यक्ति मात्र के अन्दर भय और असुरक्षा का भाव इस सीमा तक व्याप्त हो गया है कि अब वो समाज और राष्ट्र के लिए कोई भी जोखिम भरा कदम उठाने का साहस नहीं कर पाता। उसका फ़ायदा जहाँ एक ओर समाज के बीच पनपने वाले असामाजिक तत्व उठाते हैं वहीं राष्ट्र विरोधी शक्तियाँ भी निश्चिन्त् होकर अपना काम करती रहती हैं। निश्चित् रूप से यह हमारे राष्ट्र जीवन के लिए विडम्बनापूर्ण स्थिति है।

राष्ट्र जीवन की इन विसंगतियों के शमन के लिए हमें इन सबका समाधान खोजना होगा। देश के नागरिकों में राष्ट्रबोध जाग्रत करने के लिए राज्य सत्ता को राष्ट्र हित में कठोर होना होगा। अपने राष्ट्रीय प्रतिमानों के सम्मान के प्रति सजग होना होगा। राष्ट्र हितैषी नीतियों को समानता के साथ लागू करना होगा और राष्ट्र धर्म से जुड़कर पान्थिक निरपेक्षता के साथ शासन तन्त्र को संचालित करना होगा। व्यक्ति के चरित्र निर्माण के लिए हमें एक बार पुन: अपनी प्राचीन शिक्षा पद्धति, जिसमें योग, आध्यात्म और नैतिक शिक्षा को सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति का मूलाधार माना गया है, को अपनी शिक्षा पद्धति में सम्मिलित करना होगा। इसके साथ ही राज्य को अपने स्कूलों से सम्पूर्ण राष्ट्र को यह संदेश देना होगा कि भारत की संस्कृति, सभ्यता और भाषा से समन्वित राष्टीयता का भाव किसी भी पन्थ, आस्था और विचार धारा से कहीं ऊपर है यानि कि राष्ट्र सर्वोपरि है। आज भारत के राष्ट्र जीवन में इस तरह की चेतना का प्रसारित होना आवश्यक है, तभी हम एक सबल, सुशिक्षित और विकसित राष्ट्र के रूप में विश्व पटल पर स्थापित हो सकेंगे।

- प्रवक्ता (शिक्षा संकाय) श्री वार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़

सैकेंड सैक्स का बायोडाटा

❑ अंजु दुआ जैमिनी

सैकेंड सैक्स यानी स्त्री का बायोडाटा अपने-आप में बेहद जटिल पर पारदर्शी है जिसे पढ़कर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्री अपने जीवन में किन मुसीबतों को पार करती आगे बढ़ती है। स्त्री अपने जीवन में निम्न पड़ावों को पार करती है।

1. बाल्यावस्था 2. किशोरावस्था 3. युवावस्था 4. अधेड़ावस्था और 5. वृद्धावस्था। इन उम्र के पड़ावों पर ठहरती, संभलती फिसलती, उठ खड़ी होती स्त्री का जीवन संघर्षो से भरपूर है। उसे कदम-कदम पर अपने अस्तित्व के लिए लड़ना पड़ता है। स्त्री का जीवन सरल नहीं होता। उसे साँसें बचाने के लिए भी काफ़ी मशक्कत करनी पड़ती है।

प्रथम पड़ाव बाल्यावस्था को सात बिन्दुओं में विभक्त किया गया है:

1. अंकुरण से स्फुरन तक 2. स्फुरन पश्चात् विस्फोट 3. अस्फुट तिलमिलाहट 4. कमतर आकलन 5. कली कुचल भेड़िया दृष्टि 6. हिदायतों की बाड़ के भीतर 7. शिक्षा के नाम पर

एक-एक कर उसे नीचे उद्धृत किया रहा है।

1. अंकुरण से स्फुरन तक : भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति विचित्र है। उसे एक ओर तो देवी का दर्जा दिया जाता है और दूसरी ओर उसे चुड़ैल करार दिया जाता है पर कहीं भी उसे इंसान नहीं समझा जाता। वह चाहती है उसे इंसान पहले समझा जाए। एक ऐसा इंसान जिसकी भावनाओं को समाज समझे, जिसके दु:ख सुख में समाज शामिल हो और जिसके निर्णय का वह स्वागत करे।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति दुरूह है। नवरात्रों में पाँच-सात कन्याओं का पूजन किया जाता है। यह इस बात का प्रतीक है कि हमारे देश में कन्याएँ पूजा-योग्य है। इसके बावजूद 'कन्या हटाओ' का गुपचुप नारा यहाँ

लग चुका है। माँ वैष्णों की यात्रा करने वाले श्रद्धालु अपने दिल पर हाथ रखकर कहें कि उन्होंने गर्भ में कन्या को नहीं मारा या वे कन्या नहीं चाहते। पुत्र के विवाहोपरांत बहू को 'पुत्रवती भव' का आशीर्वाद दिया जाता है। बीज अंकुरण से पूर्व ही 'पुत्र चाह' का बीज अंकुरित कर दिया जाता है।

हमारे देश में कितनी लड़कियाँ ऐसी हैं जो दो लड़कियों या एक लड़की के बाद ही गर्भ में पुन: लड़की होने पर उसकी हत्या करवाने पर मजबूर कर दी जाती हैं।

क्या यही है कन्या-पूजन?

कई बार ऐसा महसूस होता है कि धर्म के नाम पर इंसान का शोषण होता है पर दूसरी ओर यही धर्म इंसान को सही राह भी दिखाता है।

'हत्या करना पाप है और हत्यारा नर्क में जगह पाता है।' क्या भ्रूण हत्या को अंजाम देने वाले सास, पति, डाक्टर या स्वयं भावी माँ हत्यारिन नहीं? क्या उन्हें हत्या के लिए सज़ा नहीं मिलनी चाहिए? कानून ने इन लोगों के लिए सज़ा का प्रावधान तो रखा है पर कितने लोगों को सज़ा मिल पाती है? ज़्यादातर लोग बच जाते हैं। ये लोग कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेते है। कोड-वर्ड के ज़रिए अल्ट्रासाउंड की रिपोर्ट डाक्टर बताती है 'कृष्ण भगवान हैं या राधा मैया हैं।'

पुत्र चाह के पीछे तर्क यह है कि जायदाद का वारिस कौन होगा, बुढ़ापे का सहारा कौन बनेगा, अर्थी को कांधा कौन देगा। यानी सौ बातों की एक बात पुत्र बिना गति नहीं।

अब इन मूर्खों को कौन समझाए कि पुत्र बिना गति होने की अफवाह ठगों द्वारा प्रचारित है। किसने देखी अपनी गति? 'आप मरे जग परलय होय'। दुनिया में लाखों लोग ऐसे हैं जो विभिन्न तबके, धर्म, समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं तो क्या बिना पुत्र के उनकी गति नहीं होती? या यह मान लिया जाए कि सिर्फ़ हमारे देश के लोगों पर ही भगवान कुपित होते हैं और पुत्रविहीन लोगों को गति प्रदान नहीं करते?

भ्रूण हत्याओं के मामले में देश के कई राज्य आगे हैं। पंजाब, हरियाणा में स्त्री पुरुष अनुपात गड़बड़ा गया है। एक हज़ार पुरुषों के पीछे सात सौ नवासी, सात सौ छियानवे या आठ सौ तीस यही अनुपात है स्त्री का। परिणामत: पंजाब के कुछ इलाकों में ऐसा चलन देखा गया है कि एक ही स्त्री

तीन चार भाइयों की बीवी बनकर रह रही है। अब भी लोग नहीं चेते तो वह दिन दूर नहीं जब पांचाली जैसी स्थिति हर घर में उत्पन्न हो जाएगी।

एक पुरुष आराम से तीन चार स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है क्योंकि वह शासक है जबकि ठीक इसके विपरीत एक स्त्री को तीन चार पुरुषों को झेलना होगा, उन सबकी माँग पूरी करनी होगी, सबकी सेवा करनी होगी, सबके बच्चे पालने होंगे। मादा के लिए माँ बनना यदि सबसे बड़ा वरदान है तो बच्चा पैदा करने की मशीन बनना सबसे बड़ा अभिशाप।

अब बात करते हैं, बच्ची के गर्भ में आने पर उसकी स्थिति की। गर्भ में आने के साथ ही उसे मारने का षड्यन्त्र रचा जाता है। यहाँ दो बच्चों से ज़्यादा बच्चे पैदा करने पर सरकारी तंत्र ज़ोर-शोर से जुटा है। इंदिरा गांधी के शासनकाल में भारतीय समाज में सीमित परिवार का नारा लगा था। लोगों ने उस समय इस नीति का बहुत विरोध किया था। लोगों का कहना था कि बच्चे ईश्वर की देन हैं। लोगों की नाराज़गी और भर्त्सना की शिकार इंदिरा गांधी को अपनी कुर्सी गंवानी पड़ी थी।

दो से ज़्यादा बच्चे होने पर सरकारी सुविधाओं में कटौती की जाने लगी। मुसीबत यहीं से शुरू हुई। अल्ट्रासाउंड-मशीन के चिकित्सा जगत में कदम रखने के बाद से ही भ्रूण की लिंग-जाँच का काम शुरू हो गया। जो लोग सीमित परिवार का महत्व जान गए वही लिंग जाँच के लिए उतावले हो गए और यहीं से कन्या भ्रूण हत्या के मामले बढ़े। गर्भपातों की संख्या बढ़ी। क्योंकि माँग बढ़ी अत: प्राईवेट क्लीनिकों में गर्भपात करने वाले डॉक्टर रातों रात चाँदी काटने लगे। पहले-पहले तो सरकार को इसमें कोई बुराई नज़र नहीं आई पर जब सरकारी सर्वेक्षण ने स्त्री पुरुष अनुपात में असंतुलन के आँकड़े दिखाए तो सरकार की भौहें सिकुड़ीं। स्त्री दर की लगातार गिरावट ने समाजशास्त्रियों की नींद उड़ा दी।

यहां समस्या यह है कि एक वर्ग को दो बच्चों का महप्व समझाया जा रहा है पर दूसरे वर्ग को नहीं। दूसरा वर्ग निरंकुश हो आबादी बढ़ाने पर जुटा है। राजनैतिक पार्टियाँ अपने स्वार्थ की ख़ातिर उनपर किसी तरह की रोक नहीं लगातीं। देश की विकास दर इसलिए धीमी है क्योंकि यहाँ सरकारी नियमों को सब लोग मानने को बाध्य नहीं हैं।

कारण, यहाँ सब धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। ऐसे में जनसंख्या

विस्फोट की कगार पर खड़ा देश बेचारगी से कम जनसंख्या वाले देश की प्रगतिशीलता को देखता हुआ निरीह अनुभूत करता है।

इन सब बातों के परिप्रेक्ष्य में मंतव्य यह है कि जो लोग सीमित परिवार रखते हैं वे लड़का अवश्य चाहते हैं। भ्रूण हत्या के पीछे ये तर्क दिए जाते हैं कि पहले तो लड़की वंश नहीं चलाती दूसरी वह पराई अमानत है, तीसरे, हर पल उसकी सुरक्षा को लेकर जोखिम बना रहता है।

आज इक्कीसवीं सदी में भी अठारहवीं सदी में स्त्री के अस्तित्व को लेकर उठाया जाने वाला प्रश्न जस का तस है। स्त्री पुरुष समानता का नारा लगाने वाले वही लोग हैं जो आज भी घर की स्त्री को चारदीवारी में रखना पसन्द करते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में घर से बाहर निकलने वाली स्त्रियां छिनाल हैं।

एक लड़के की चाह में तीन-तीन चार-चार कन्याओं की हत्या कर चुके माँ बाप क्या घोर नर्क के अधिकारी नहीं? क्या उनकी आत्मा उन्हें कचोटती नहीं? ऐसा न हो कि बुढ़ापे की लाठी बुढ़ापे में उनके सिर पर पड़े।

कहने का तात्पर्य यह है कि भ्रूण में आने से पहले ही कन्या के न आने हेतु यज्ञ-हवन शुरू हो जाते हैं। फलां-फलां वैद्य के पास जाने से शर्तिया लड़का होगा। फलां दवाई खाओ आदि।

यहाँ मुददा है, समाज की स्त्री विरोधी मानसिकता। इस मानसिकता को खत्म करना होगा। देवी की पूजा करने वाले ही देवीहंता होते हैं। ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो पुत्र की चाह में बेटियों की लाईन लगा देते हैं।

इस समस्या का खात्मा अब होना ही चाहिए। कानून का कड़ा होना, सरकार द्वारा भ्रूण हत्या के खिलाफ नैतिक आंदोलन, समाजसेवियों द्वारा निम्न तबकों में जाकर नाटकों द्वारा या संप्रेषण में किसी माध्यम द्वारा उन्हें समझाना और सबसे बड़ी बात धर्म का सहारा लेकर भी स्त्री भ्रूण हत्या को पाप करार देना इस समस्या को उखाड़ने में कारगर सिद्ध हो सकता है।

क्यूं होता है ऐसा
''बेटी माँ का हर दु:ख समझती
आह! माँ क्यूँ उसकी हत्यारन बनती।'' ●

- 839, सैक्टर-21सी, फरीदाबाद-121001

FILE ARTICLE : NITI 1979

DEMOCRACY MISTAKEN FOR LICENCE

❑ Kuldeep Nayar

Some way should be found to stop such misuse of the force by the governmet and politicians. New Delhi is not unaware of the problem. At the last meeting of the state Chief Ministers with the Prime Minister on law and order in September, a paper was circulated which said: "Instances of political interference in the working of the police department are not uncommon. Such interference, particularly in matters of postings, transfers, promotions, has a demoralising effect on the efficiency of the force. A general impression gets creatd that efficiency and merit may not get true recognition and only those officers and men who are in a position to secure extra departmental influence thrive. Political interference even on behalf of anti-social elements is noticed. This seriously affects law and order in the area and the policemen are at their wit's end to curb the activities of such antisocial elements".

The police memorandum submitted to the National Police Commission suggests an autonomous set-up like that of the Comptroller General. This may not be possible because the force is part and parcel of the law and order machinery. Steps should be taken to stop the use of police by ambitious Chief Ministers for their or their party's purpose. Whatever the nature of local responsibilites for maintaining law and order, the ultimate responsibility for maintaining internal peace and security rests on the government. Even in the UK it is the same pattern of accountability. In the ultimate analysis, the government should be responsible for the police.

This also makes it difficult to justify the indiscipline that the police exhibited in recent days. Emoluments and better working conditions are important and these points were registered when after the Panjab agitation the Centre and the States woke up to their long-pending demands.

Policemen must realise how far to go. By raising slogans, pelting stones and joining hands with political parties, they cannot win the sympathy they are trying to arouse for their cause. In fact by indulging in these things they are themselves becoming rabble-rousers.

It could be that the policemen's attitude is only a reflection of the general attitude in the country. Democracy has been mistaken for licence and the very fabric of the nation is sought to be demolished. If the country has to develop, it has to be disciplined and this goes for workers in the railways, coal mines or steel plants. Problems cannot be solved through chaos. Everyone must realise this or be made to. And to maintain law and order is the first and foremost duty of those who are engaged in the process of governing. ●

- The writer is an eminent journalist.

..... **पृष्ठ 29 का शेष**

में भी असत्य बात नहीं निकलती। जब आपने ब्राह्मण देवता को कल बुलाया,

उसी समय मैंने जान लिया कि कम से कम कल तक तो अवश्य ही काल पर आपका अधिकार है।''

अब युधिष्ठिर को अपनी भूल का बोध हुआ। वे बोले-''भैया भीम, अच्छा हुआ, तुमने मुझे सावधान कर दिया। पुण्य कार्य तत्काल करना ही उचित है। उन ब्राह्मण देवता को ढूँढकर उपस्थित करों मैं आज ही उनकी अच्छा पूरी करूँगा।''

'ज्योतिपथ' से साभार

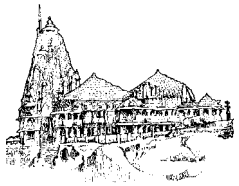

THE MEANINIG OF TIRTHA

One question that we have been repeatedly asking ourselves while putting together the twin issues on *tirthas* is 'Why this theme?' Pilgrimage sites are now being actively promoted as tourist spots. Easier and cheaper travel facilities combined with increasing middle-class affluence have resulted in a dramatic rise in the number of tourists across the globe and the traditional pilgrimage spots have not been exempt from this influx. A vast amount of literature, scholarly as well as popular, is being churned out on virtually every pilgrimage destination. So, what fresh insights could we possibly be offering to our readers?

What does *tirtha* mean? Is it the same as pilgrimage, or does it have other connotation? What does a pilgrimage signify, for that matter? Can this term be used in a generic fashion, or does it have shades of meaning that vary with cultures, traditions, locales and times? Are the Hindu doing *parikrama* around Vishwanatha at Kashi and the Muslim doing *tawaf* around the Ka'ba at Makkah doing the same thing? What possibly is going on in their minds? What emotions do they experience? Is it possible to share these experiences when they meet? Is there a common language for this?

Then there is the distinction between the devout and the skeptic (or the agnostic, the atheist and the heretic). What does the uninitiated make of the salutations and prostrations, the fasts and vigils, the burning of incense and the waving of lamps, the unintelligible prayers and the apparently irrational charity? True, the scenic ambience, ornate architecture, tasteful decorations, soulful music and vibrant fervour at a tirtha can all evoke a sympathetic or even an awed response from even skeptics and agnostics; but there are other elements that 'outsiders' may find incomprehensible or even positively repulsive: mindlessly monotonous rituals, gruesome animal sacrifices, self-inflicted torture, and narrow exclusivist sermons. Irreverent outsiders can obviously vitiate the holy atmosphere which is so precious to the devout. Hence the restrictions on non-believers entering shrines or participating in closed rituals that obtain in virtually all religious traditions.

More intriguing are the differences within traditions that the outsider often takes to be monolithic. What does an austere celibate given to lifelong worship of Shiva at Uttarkashi make of Krishan's ubiquitous sport in Vrindavan? What feelings arise in a Lutheran Protestant when he sees the rich tapestry of icons, images and murals at St. Peter's Basilica or attends Mass there? How does a Theravada Buddhist make sense of the huge pantheon of divine beings represented in the Tibetan Buddhist tradition? How does a Sufi from the dargah at Ajmer react to the restrictions on veneration and prostrations at Prophet Muhammad's and other tombs in Madinah?

Religion itself is a conglomerate of diverse dogmas and folkways, social mores and cultural values, personal psychological orientation as well as the collective unconscious. So even 'insiders' approaching a *tirtha* are likely to have very different feelings and reactions individually. How does an Indian tourist react to the massive ruins at Angkor Wat? Does he see them merely as historical remains of archaeological interest, or does he feel the presence of the Holy? How does this reaction vary with the religious affiliation of the visitor-Hindu, Buddist or Muslim? And what are the thoughts of someone who does not care much for religion but has strong Indian nationalist sentiments? How

would the Kampuchean react to his suggestion that what he sees in front is 'Greater India'? What if this Kampuchean is Sita, the teenage vendor selling mementoes outside the temple complex?

Ancient cities like Varanasi, Jerusalem, Makkah and Rome have been important pilgrimage centres since ancient times. They have served as religious crossroads where humans confronted the Divine. But they have also been cultural 'melting pots' where people had to encounter men and women of other faiths, cultures, convictions and religious affiliations. While much of this interaction was reponsible for the cosmopolitan character of these cities they also lead to conflict, strife and open warfare. The juxtaposed temples and mosques of Varanasi are more often reminders of this conflict when they could well have been symbols of harmony, just like the musical *gharana* of Kashi where Hindus and Muslims train in classical music with equal discipline and devotion. The 'Wailing' Wall of Jerusalem still draws tears from battle-hardened Jews for being the remnant of the ancient Temple of Solomon which was razed to the ground more than once and in whose place stands the Mosque of Umar atop Mount Moriah. While Jerusalem is a hotly contested territory-being of importance to Jewish, Christian as well as Islamic traditions-the peace of uniformity reigning at Rome or Makkah can be very deceptive. For the price of that uniformity is the total demolition of cultures termed 'pagan' coupled with an exclusivism that prevents the flowering of diversity.

The 'non-Hindus' not allowed or 'only the baptized may enter' notices in some Hindu temples and Christian churches, or the prohibition on non-Muslims from entering Makkah are only symptoms of a much deeper human malady that prevents us from relating to each other at a deeper level of our being. But if there are numerous divisive forces, the attempts at breaking barriers and bridging divides

are no less significant. The famous Vaikom satyagraha in Kerala initiated by Gandhiji and led by Vinoba Bhave was an important step in allowing Harijan access to Hindu temples, and when Vinoba visited the Vithoba shrine at Pandharpur accompanied by a German lady, a Muslim worker, a Parsi young man and some Harijans, it was probably the first time that a traditional Hindu temple was formally declared open to non-Hindus.

There have been numerous recent attempts at bridging sectarian divides within different religions. The Christian ecumenical movement has made concerted organized efforts to increase cooperation between the various Christian Churches and denominations. The Vishwa Hindu Parishad and Organizations of the Islamic Conference have similar aims though the effecient organization of the pilgrimage institutions of Kumbha Mela and Hajj probably provide greater impetus to sectarian unity amongst Hindus and Muslims.

The efforts at *inter-religious* dialogue and understanding have, in comparison, been feebler and less effective. How does a Hindu appreciate the Christian thesis that incarnation of Jesus is unique and 'no one comes to the Father but through me'? How does (s) he honour the belief that 'Islam is the most perfect of all divinely revealed religions' and that Hazrat Muhammad is 'the seal of the Prophets'? How does a Muslim reconcile himself to the Hindu reality of numerous gods and their worship through images, a practice that amounts to *shirk* (idolatry) and *kufr* (unbelief) in orthodox Islam? How does a Christian grapple with the Buddhist silence on the existence of God?

None of these are new questions. But the fact that we hardly have any definite answers to these questions only exposes the fact that nowhere is our basic religious knowledge up to the level of our basic knowledge of mathematics or biology. So an appreciation of *tirthas* can

be a small step in the process of religious education; and the *tirthas* can serve as concrete reminders of the beliefs and aspirations of traditions other than our own. In trying to understand these *tirthas* we understand ourselves and in meeting the 'other' at the *tirthas* we are forced to take a fresh look at our own inner being. ●

- Compiled

ये तिरंगा

(गणतंत्र दिवस के शुभअवसर पर)

ये तिरंगा विश्व का सबसे बड़ा जनतंत्र है
ये तिरंगा वीरता का गूंजता इक मंत्र है
ये तिरंगा वंदना है भारती का मान है
ये तिरंगा ये तिरंगा ये हमारी शान है

x x x x

ये तिरंगा विश्व जन को सत्य का संदेश है
ये तिरंगा कह रहा है अमर भारत देश है
ये तिरंगा इस धरा पर शांति का संधान है
ये तिरंगा ये तिरंगा ये हमारी शान है

x x x x

शीत की ठंडी हवा, ये ग्रीष्म का अंगार है
सावनी मौसम में मेघों का छलकता प्यार है
झंझावातों में लहरता ये गुणों की खान है
ये तिरंगा ये तिरंगा ये हमारी शान है

x x x x

रंग केसरिया बताता वीरता ही कर्म है
श्वेत रंग यह कह रहा है, शांति ही धर्म है
हरे रंग के स्नेह से ये मिट्टी भी धनवान है
ये तिरंगा ये तिरंगा ये हमारी शान है

–राजेश चेतन

ARE YOU JEALOUS?

❑ Dr. Anjanee

"The disease of Jealously is so malignant that it converts all it takes into its own nourishment"

- Joseph Addison

Jealousy, the green-eyed monster, is closely related to envy, a deadly mix of inadequacy and anger that will torment you if your self esteem is on shaky ground.

While on one hand, it is generally assumed that men are more vulnerable to feelings of jealousy than women in certain areas, particularly in their intense desire for power, position, status, possessions and reputation. On the other, women could be jealous about things as trivial as their neighbours car, the wall texture on the neighbours wall to the more profound that might include a jealous mother-in law of the type we often see in today's television serials!

A jealous person must possess the object another has, must gain security through performance and must gain acceptance of a higher authority. The problem gets compounded if it starts to distract you from your own life. You are so preoccupied with someone else's circumstances, you end up ignoring your own! Jealousy and envy of course can do you immense good if they motivate you to improve your appearance, loose those extra pounds, learn a new skill or work on your self esteem!

As much as we hate to admit it, we've all been jealous of someone else at one time or another. We hate to admit it because the emotion we feel is a deep, dark, nasty feeling. Jealousy is the surface lesion that hints at the real wound: a sense of personal loss, a lowering of self-esteem and, at times, a feeling of self-criticism. These deeper emotions seep out in the form of jealousy and they can be tough to deal with in the workplace, where there is immense

competition for rewards and opportunities.

Employees who find themselves the object of envy and jealousy may be victims of what is called the Cinderella Complex-Merely doing ones job well can arouse a sense of inferiority in others that leads to resentment and hostility at work resulting in the group of the low self-esteemers who think work is very competitive, where people are pitted against each other.

As technology grows ever more complex, jobs become increasingly specialized. That means workers rely on each other more than ever to generate products and services. If problems or tensions hamper these interdependent relationships, organizations become vulnerable.

Gossip, backbiting and jealousy are evil attitudes that erupt into harmuful words, and there's no doubt they do great harm. As you know, gossip and backbiting are absolutely no fun unless you have someone to listen and to agree! When others direct gossip and backbiting our way, if we could just keep our mouths shut and make no response whatsoever, often that's the end of it--the fire goes out.

Proverbs 26:20 says "Without wood a fire goes out; without gossip a quarrel dies down. "When the gossip and backbiting start coming your way, just let it die. If you refuse to respond, you'll see an amazing reaction on the part of those who are spreading those rumours and malicious talk.

Wherein jealousy produces excessive discomfort or relationship difficulties, Buddhism teaches that individuals must learn to "let go" of things we desire most thereby freeing ourselves from the harmful effects of this volatile emotion.

As Emma Goldman puts it "Jealousy is indeed a poor medium to secure love, but it is a secure medium to destroy ones self-respect. For jealous people, like fiends, stoop to the lowest level and in the end inspire only disgust and loathing".

-[The writer is Professor of Communication, at the Management Development Institute, Gurgaon.]

STAMMERING IS CURABLE

❑ **Dr. Satyendra Shrivastava**

Why people stammer? No one knows for sure. But there are some baffling and unique aspects to this health condition. First, as to its origin, there is no proven clear cut single cause. There are many theories and studies. Many factors seem to be involved: genetics, early up-bringing, lingering of normal childhood dysfluencies, neuro-physiological problems in brain etc.

Second, varied manifestations of the problem. Stammering may come and go in a most irrational way. Person who stammers (PWS) may one moment be totally helpless to communicate and next moment she or he may speak quite fluently. Some PWS may undergo unnoticed silent moments of 'block', while others may openly stammer and struggle with a word for many seconds. Again, a few minutes later, they may say the same word with no problem at all. Some PWS may have great difficulty talking over phone, others may have problem saying the name of their destination to the bus conductor etc.

Third, sufferer's reaction to it: some PWS (covert stammerers) go to great lenghs to hide it. Many develop seriously disabling attitudes of avoidance and alienation. Some other may stammer openly and may not think much of it.

Fourth, society's reactions: It may range from ridicule to horror. Few health conditions have been as misunderstood as stammering. Some employers will prefer to hire anyone but a stammerer.

Lastly, few health conditions have seen such a glut of 'bogus cures'. There are many sources who offer all kinds

of remedies: snake bite to the tongue, special stones to be put under tongue, magic potions to tongue tie operations. Modern speech therapy comes closest to a good solution but relapses are common. So, what can be done about it? Here are some principles which have been found hepful:

1. Accept the problem

Acceptance frees us from 'shame' and the constant need to hide it. Mind is free to get on with the act of talking. Many covert stutterers report improved speech after they learn to accept it and talk about it in a matter of fact way. But to accept it unreservedly, we need to be honest with ourselves and a little humble too. We need to realise that in the ongoing drama of life we all have been given different roles to play, which may offer temporary advantages or handicaps, as the case may be. Once we accept it, there is no role conflict. We are no more trying to pass off for a "fluent normal person". A practical way is to start talking about it with your trusted friends or close relatives.

2. Give up avoidances

Over the years, to avoid stuttering, we would rather not do certain things-talking to strangers, answering phone, volunteering for a leadership role etc. We would simply switch a hard word for an easier word. All these little acts of avoidance strengthen our fears till they become bigger than our life itself. We live in constant fears. The solution is just the opposite, beginning with small act: speak when you have to; don't postpone it. Gradually increase your comfort zone and tackle bigger challenges like opting for that much desired high profile job which involves lot of talking.

3. Communication versus Fluency

Focus on becoming a good 'communicator' rather than a fluent 'talker.' Communiction is what matters at the end of the day and communication is much, much more than the mechanical act of talking. Pay attention to other areas: listening skills, body language, eye contact etc. Smile wherever appropriate. Use audio-visual aids wherever possible. Do you really want to communicate? If yes, your speech will not be a hindrance. Cultivate that positive attitude.

4. Calm mind results in better speech

Along with what we want to say, other negative ideas too, surface on our consciousness: Will I stumble on this or that word? How will my listener react? etc. These negative emotions and thoughts makes a PWS do what she or he wants to avoid at all costs-stammer. Where are these thoughts, fears coming from? Most of these are coming from old memories of failed attempts to talk and people's reaction to it, from early childhood (3-5 years). An effective way to deal with these negative emotions, memories and fears is regular deep introspection or meditation. Every religion offers many ways of entering such a state of calmness and dealing with such fears.

5. The mechanical act of speech

Study your speech and its particular manifestations by recording it and analysing it; use a camera phone, audio tape or just watch yourself in a mirror while talking to someone on phone. When you block on a particular word, slow it down or freeze it so that you could hear, see and understand what it is that you are doing wrong with your speech mechanism during such moments. Now, do the same act with greater consciousness of it-and finally try to change it. For example, if you notice that you blink eyes during speech difficulty, fake a block and blink your eyes consciously at different rates (fast, then slow, then fast again) and then try to speak looking into the mirror without blinking at all. Second important measure is to talk while breathing out. PWS often hold their breath in anticipation of stammer. But we can talk only if air is passing through the sound box. Abdominal breathing has been found to promote better

speech. Learn more about these techniques, either from a speech therapist, internet or books. And then, practice.

6. Join a support group

Start one if there are none where you live. Support group can be started with even two PWS. Support group is the best place to get the emotional support, which many PWS need, often without realising. PWS can learn and practice various speech techniques, therapy ideas and other life skills (self assertion, facing interviews etc).

7. Acceptance of diversity

Lastly, what can society do about it? Society has a very important role. Almost 90% of the phenomena of stammering derives from social reactions to disfluencies of a child, adolescent or adult. Many PWS confess that, they would have been more comfortable if their families had acnowledged their condition and talked about it, instead of treating it as a 'taboo' topic. Can we accept stammering as just one more diversity among ourselves? In practice it means:

- Listen to a PWS calmly; don't interrupt or say words for them; don't move your eyes away.
- If you don't understand, ask them again.
- Speak yourself in a relexed and calm way. Don't hurry. Let them know, that your are listening to them and that you have time for them.
- While talking to a child, don't ask too many questions; let her or him finish, then wait for a few seconds, and then talk or ask a question slowly.
- Never make fun of their disability. Let the topic be discussed objectively without pointing fingers.

The author is a Community Health consultant and a recovering stammerer. Samagra Trust is devoted to social work enlightened by inner realisation. It is working with children and adults facing speech issues.

- 478/1, Eden Bagh, Herbertpur, Dehradun.

'PERFECTION' IS NOT ALWAYS GOOD

❑ **Suresh Chandra**

"Have no fear of perfection; You will never reach it."

From the time you are born, you are evaluated and corrected by different people in your life. In school and at home, you learn very quickly that in order to attain the approval of others, you must achieve specific standards. In addition to pressures from the outside, many people feel pressure from within to succeed or perform at certain level. The desire to improve your performance or meet the high standards is not the same as being perfectionist.

So, what is perfectionism and how does it differ from a healthy desire to achieve high standards? A psychiatrist David Burns defined perfectionists as people "whose standards are high beyond reach or reason and who strain compulsively and unremittingly toward impossible goal and who measure their own worth entirely in terms of productivity and accomplishment." Some psychlogists say that perfectionism has the following dimesions:

1. Excessive Concern Over Mistakes - The person having excessive concern over mistakes has a tendency to believe that it is extremely important not to make mistakes and that making mistakes is the same as failure.

2. **High Personal Standards -**The person believing in high personal standards sets high expectations from himself and if these are not met considers himself a second rate person.

3. **Doubts About Action** - Doubting one's action involves an exaggerated feeling that the task on hand has

not been completed correctly. Such a person gets longer to complete the work as he checks it repeatedly.

4. **Need for Organization** - The people who feel excessive need for organization are overly fussy and concerned about neatness, order and organization. Sometimes they spend so much time organizing and maintaining order that they leave important things undone.

5. **High perental expectations and High Parental Criticism** - Both of these tendencies go hand in hand. Parents who have unrealistic expectations from their children become overly critical when their expectations are not met. Such criticism lead to social anxiety and worry in the children.

Areas of life Prone to Perfectionism

Perfectionism can effect a broad range of situations and activities in one's life. Some people tend to be particularly perfectionist in their work, setting overly strict standards for their own performance or for the performance of their co-workers. For example, a construction worker who is very concerned about accurate measurement may spend too much time measuring and re-measuring, only to find his job is never completed on time. Similarly, some supervisors may become frequently angry and upset if the workers arrive for work even a few minutes late.

Some perfectionists are obsessed with their personal cleanliness, appearance and tidiness of their house. They wash their hands repeatedly, brush the hair frequently and change clothes every time somebody visits them or they go out. This type of perfectionism can interfere with a person's ability to get along with their room mates or even family members.

Physical appearance also becomes an obsession with some people, especially young women. They are extremely conscious of their figure and vital statistics. "If I weigh above

50 Kg., I am fat" will say a perfectionist about body weight. She would take to dieting and even fasting, impairing her health in the process. Some may spend hours in the morning choosing a dress that looks 'just right'.

Writing can be difficult for some people who are perfectionists. They take a very long time when writing a letter, filling out forms or doing some other writing work. If they write an article, they never send it to the editior of the magazine because they feel that it is not up to the mark and thus never become a writer.

Health obsessed perfectionists visit doctors frequently to check out unusual symptoms or to have unnecessary medical tests done to detect nonexistent diseases. They wash themselves excessively or avoid touching anything that they view as contaminated: e.g. toilet seats, money, people's hands etc.

The Impact of Perfectionism

As stated earlier setting high standards for the work you are doing is alright but perfectionism becomes a problem as it creates tension. Excessively high standards can lead to unhappiness and interfere with the day to day life. It can effect all the areas of life: work, relationship and even recreation.

For example, a high school teacher was overly concerned about his teaching when the Principal was observing his class. Being excessively conscious he was unable to concentrate on his lesson and made more mistakes than he might have made on an average day. Similarly, a clerk was so concerned about doing his work well that he felt extremely uncomfortable doing anything else. His work load was not very heavy but he avoided talking to his colleagues and was even reluctant to take a lunch break. His intention was to make a good impression but in the process he alienated his co-workers including his

supervisor. All of this made him very unhappy.

Perfectionist standards toward the family members can affect the self esteem and sense of worth of your children and spouse. If your children are constantly led to believe that they are not living up to your expectations, they may feel worse about themselves and may even stop trying performing better in their studies and other school activities. A nagging husband always criticizing his wife for not keeping the house neat and tidy enough, not cooking the meals well or not looking after the children properly and teaching them manners will poison the domestic life and make it a hell for both.

Perfectionism can affect a person's ability to enjoy leisure activities and recreation. A person wants to learn guitar for having fun, joins an evening class and takes lessons. He practices guitar for two hours daily after office hours even when he is late or badly tired. He very often compares himself with the professional players and wants to excel them. Instead of enjoying himself and having fun he becomes tense, gradually begining to loth it and in the end vows never to touch the instrument again. Similarly an office worker takes his friendly matches of badminton very seriously, feels hurt when defeated and begins to practice for long hours to become a perfect player, The game makes him sad instead of giving joy.

Psychological Consequences

Depression - Low moods afflict almost every body sometime or the other. These are transitory and pass off after a short period. But if such moods linger for months they may impair the day to day life. Perfectionist thoughts and behavior play an important role in aggravating the disorder. Such people set unrealistic high standards for themselves and may start to feel inadequate, disappointed and even worthless if such standards are not met

continuously. They nurse a feeling that something is wrong with them that interferes with their ability to reach their goals. They never realize that their goals are unrealistically high and need correction.

Anger - Like depression, a tendency to experience excessive anger stems from many factors, one of them being our failure to achieve some goal. Inflexible belief about the way thing "should be" can easily lead to disappointment and anger when expectations are not met. Therefore, people who are perfectionists are often more prone to feelings of anger, frustration and irritability. You may be angry if your hair is not cut the way you expected or your children leave the book or toy in the wrong place. A perfectionist corrects other people over and over again and makes them angry.

Social anxiety refers to fear and discomfort when surrounded by other people. People who maintain very high standard of behavior for themselves, may hold such beliefs as, "I should be liked by everybody.I should never make a mistake."

Worry - Worry is very helpful, in that it helps you plan for the future. If people did not worry at all, no one would bother studying for an exam or making it to work on time. Some worry is essential in getting things done. But worry becomes a bad thing when we develop a tendency to dwell on negative things that might happen in future.

Perfectionism plays a great part in aggravating this tendency. When very high standards are set for yourself or your children, there is always a risk of those standards not being met, which can lead to worry. For example, if you believe that your children should be performing at the highest level in all of their activities, including music, sport, swimming etc. besides their studies you may always be worried that their performance may slip.

Overcoming Perfectionism

As detailed above perfectionism can lead to many difficulties in day to day life and so it is very important to overcome it. But before starting it would be pertinent to identify the area in which your problem lies and then set on the path to remedy the malady. Remember your goals for overcoming the tendency should also be realistic and not too perfectionist. If you feel that you are over concerned with your personal apperance and cleanliness then don't worry if you gain a little weight and your hair are not combed properly. Don't wash your hands repeatedly and don't be upset if the maid has not washed the plates the way you want.

If you are over conscious about being judged by others mix with people and talk to them freely. You may mispronounce some words or may not have too much knowledge about the topic they are discussing but be comfortable and at ease.

Some other examples of perfectionist behavioer are doing much more than is necessary for dealing with a situation, excessive checking and reassurance seeking, failure to delegate tasks to others and excessive organizing and list making. Try to take things easy, not carelessly. There may remain some shortcomings if you act in a non-perfectionist way but you will find that not much harm will come by such minor things.

The worst effected by this tendency of perfectionism are the children of the middle classes and the young executives. The parents of these children expect too much from them, not only in their studies but in every field. The result is frustration, depression and nervous breakdown leading even to suicides. Similarly, young business executives set very high goals for themselves, work hard day and night to make their career a perfect model of success and become victim to early burn out. They also fall prey to worry, anxiety and depression which may ultimately lead to nervous break down.

Perfect vs. Whole -The character of a human being consists of many shades. It is not all black and white but there are grey shades as well and this grey is very much part of him. We can make a perfect car, T.V. or some other machine but we can never create a perfect human being. Imperfections are an integral part of a person and these make a 'whole' man not a 'perfect' human being.

So, have high goals but not unreachable goals; be a 'whole' human being and don't try to be a 'perfect' human being' ●

- The writer is the Chairman of Bharat Vikas Parishad Prakashan.

अग्नि अग्रणी भवति

ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन चारों वेदों में यजुर्वेद के चालीसवें, जिसे ईशावास्योपनिषद् अथवा ईशोपनिषद् की संज्ञा भी दी गई है, में कुल 18 मन्त्र हैं जो कि प्रतिदिन पठनीय, स्मरणीय और मननीय हैं।

यहाँ उन्हीं में से 16वें मन्त्र को प्रस्तुत किया जा रहा है:

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम॥

(युज : 40 : 16)

हे नायक! धनहेतु, सुपथ से हमें चलाओ।
कटुता संकट कुटिल, पाप से सदा बचाओ।।
हे प्रकाशमय देव! सकल आचरण हमारे।
जो कुछ भी गुण कर्म विदित थे तुम पर सारे।।
हम बहु प्रकार से आपकी, भक्ति हृत्पटल पै धरें।
अति प्रेम पूर्ण प्रभु अन्त में पुनः 'नमस्ते' हम करें।।

RETURN OF THE NATIVE

Time to ponder : A Joint Family or a nucleus one-Ed.

As the dream of most parents, I had acquired a degree in Software Engineering and joined a company based in USA, the land of opportunity. When I arrived in the US, it was as if a dream had come true.

Here at last I was in the place where I wanted to be. I decided to stay in this country for about five years to earn enough money to settle down in India. My father was a government employee and after his retirement, the only asset he could acquire was a decent one bedroom flat.

I wanted to do something more than him. I started feeling homesick and lonely as time passed. I used to call home and speak to my parents every week using cheap international phone cards. Two years passed, two years of burgers at McDonald's and pizzas and discos,

Finally I decided to get married. Told my parents I have only 10 days of leave and everything must be done within that. I got my ticket booked in the cheapest flight, was jubilant and actually enjoyed hopping for gifts for all my friends back home. After reaching home I spent one week going through all the photographs of girls and as the time was getting shorter, I was forced to select one candidate.

I told my in-laws, that I would have to get married in 2-3 days, as I will not get any more leave. After the marriage, it was time to return. After giving some money to my parents and telling the neighbours to look after them, I brought my bride to USA. My wife enjoyed this country for about two months and then she started feeling lonely.The frequency of calling India increased to twice a week, sometimes three times a week. Our savings started diminishing. After two years we started to have kids. Two lovely kids, a boy and a girl, were gifted to us by the Almighty.

Every year I decided to go..... but part work, part monetary conditions prevented it. Years went by and visiting India was a distant dream. Then suddenly one day I got a message that my parents were serious. I tried but couldn't get any leave and thus could not go to India. The next message was my parents had passed away, and as there was no one to do the last rites, the society members had done whatever they could.

A couple more years passed away, and much to my children's dislike and my wife's joy, we returned to India to settle down. I started looking for a suitable property; but to my dismay, my savings were short and the property prices had gone up during all these years. I had to return to the US. My children and I returned to US after promising my wife to be back for good after two years.

Time passed by, my daughter decided to get married to an American and my son was happy living is US. I decided it is enough and wound-up everything and returned to India. I had just enough money to buy a decent two-bedroom flat in a well-developed locality.

Now I am 60 years old and the only time I go out of the flat is for the routine visit to the nearby temple. My faithful wife has also left me and gone to the holy abode.

Sometimes I wonder, was it worth all this? My father, even after staying in India, had a house to his name and I too have the same, nothing more. I lost my parents and children for just ONE EXTRA BEDROOM. I get ocassional cards from my children asking if I am alright. Well, at least they remember me! Now perhaps after I die it will be the neighbours again who will be performing my last rites, God bless them! But the question still remains, "was all this worth it?" I am still searching for an answer. ●

- Compiled

THE GLOBAL GURU - SRI SRI RAVISHANKAR AND HIS ART OF LIVING.

With his incessant globetrotting, Sri-Sri Ravi Shankar seems the perfect globlised guru. His followers believe that he will go down in history along side figures like Buddha, Mahavir and Ramakrishna Paramhansa.

The Man

Shankar was born on May 13, 1956, in Tamil Nadu. His father, Venkat Ratnam, was a scholar of languages and now does charitable work. Mother Vishalakshi died in 2000. The couple chose the name "Shankar" because May 13 is the birthday of ninth-century saint Adi Shankara. In the early 1990s, Shankar met the famous sitar player Ravi Shankar, who complained that the holy man was unfairly capitalizing on the name the musician had made famous. Soon after, the guru added the honorific "Sri-Sri".

As a boy, Shankar refused to play soccer with the other children, saying, "These feet cannot kick anybody, let alone an inanimate ball". Instead, he spent time writing poems and plays, and studying. He graduated from Jaseph's College in Bangalore with a science degree and was offered a job in a bank. He turned down the offer, following a spiritual path instead, eventually travelling to Rishikesh to study with Maharishi Mahesh Yogi, the guru famous for popularizing Transcendetal Meditation (TM)

In 1982, Shankar entered a 10-day solitary period of silence, during which he says the centerpiece of the Art of Living, the Sudarshan Kriya, was revealed to him.

The Teachings

The centerpiece of the AOL program is the Sudarshan Kriya, a breathing technique that promises to cleanse the body and mind and eliminate stress.

The Kriya requires breathing in and out through your nose in circular breaths without pausing in between the inhalation and the exhalation. This lasts about 25 minutes. The instructions are to start with 20 long and slow in-out breaths, followed by 40 medium-length breaths and 40 small, fast ones. This 20-40-40 is done three times. After that, you let the breath do what it wants for one minute and then finish with five long, slow "so-hums." Then the students are told to allow their thoughts and emotions to flow, to deny nothing. After about 25 minutes, the breathing over, they are told to lie on their backs and then on their right sides.

The breathing technique Shankar teaches is based on the notion that just as emotions impact how people breathe, how they breathe can also impact their emotions. By controlling their breath, the idea goes, people can counter their stress and recover from natural disasters and violent surroundings.

Charitable Work

Shankar's organization practices the charity he preaches. Near the Bangalore Ashram, an AOL-funded school provides 650 poor children from illiterate families 10 years of free education and daily meals. AOL executives say they are doing similar charitable work in some 3,000 villages. Another new project under construction at the Ashram is a vocational school that will teach villagers how to become tailors. The AOL is accredited as a nongovernmental organization in special consultative status with the United Nations. In the United States, the nonprofit group Prison Smart has spent roughly $250,000 in recent years teaching Shankar's techiques to prisoners.

5H Program

Ravi Shankar runs a 5H Program which is meant to strengthen communities through its 5 main areas of focus:

- Health - Providing basic health care for every member of the society.
- Homes - Building a roof over every head.
- Hygiene - providing clean drinking water and sanitary conditions for all.
- Human Values - Sustaining development through Human Values.
- Harmony in Diversity - Bringing the World together.

Another opinion

No doubt Sri-Sri Ravi Shanker is very popular having thousands of followers-if not millions-as claimed by his admirers. But what is the secret of the popularity and large following of these "new age" gurus? First They have to be charmistic. An image is very important. Whether it be Acharya Rajneesh or Baba Ramdev, a dashing figure is important. Then comes the presentation. Long flowing hair and a beard is good. It adds to the mystique. Long hair is the substitute static for a halo around a person.

Second, They have to be good marketers. A good marketer looks at what among the things on offer is most likely to sell. Usually the market demands easy answers and quick results. The masses are no great thinkers. The commodity on sale has to be packaged and put in wraps. Talks at U.N. and W.H.O. give it a proper window dressing.

Breathing techniques are very common. They are also very effective-otherwise they would not be so commonly endorsed by various schools of thought. Vipassna is also a breathing technique that claims its lineage to the Buddha himself. What SSRS has done is what a few dozen Indian gurus have done and will no doubt continue to do-packaging of what already exists.

Despite all the criticism, whatever works for a person is important. If Sudarshan Kriya or Kapaal Bhaati works for you that is great. ● *- Compiled*

RIVER YAMUNA: ORIGIN, RELIGIOUS IMPORTANCE, WATER POLLUTION & CONTROL MEASURES

❑ **Dr. R.D. Gupta**

Introduction

Like the river Ganga, the river Yamuna has played a legendary role in the Indian history. The Yamuna, the daughter of Sarayu and sister of Yam (the God of Death), is of very much religious significance as Mathura and Vrindavan, the birth and dwelling places of the Lord Krishna are situated on the banks of this river. These days the river Yamuna is dying slowly-a victim of pollution emanating from domestic and industrial wastes. Despite nearly Rs 378 crore was spent under Yamuna Action Plan (YAP) to save the river from being polluted but at the end of it all environmentalists described the river as a choked sewer. Discharge of untreated and partially domestic sewage and industrial wastes from Hayana, Delhi and Uttar Pradesh, are the main factors responsible for increasing pollution of the river Yamuna.

To minimize the pollution of the river and to improve the water quality the government started YAP, covering pollution abatement works in 12 cities of Haryana and 8 cities/town in UP besides Delhi during 1993 at the estimated cost of Rs. 496.45 crores. The YAP, however, did not show any effective impact as the pollution loads joining the Yamuna river has got doubled in the last 2 decades making it more ailing than it was hitherto. The main cities under YAP are Yamuna Nagar, Karnal, Panipat, Sonipat, Gurgaon,

Faridabad in Haryana and Vrindavan, Mathura, Agra, Etawah, Ghaziabad and Noida in UP and of course Delhi.

Origin and importance

With its source in the pristine Himalayan Yamnotri Glacier, the Yamuna is 1376 km long between this point of origin and Allhabad in U.P. At Prayag, the river Yamuna falls into the Ganga. The catchment area of the river and its tributaries cover 58,000 km in Himachal Pradesh, 21,000 km in Haryana, 1400 km in Delhi, 1.02 lakh km in Rajasthan, 1.40 lakh km in Madhya Pradesh and 74,000 Km in UP. The annual flow of water in Yamuna is about 10,000 crore kilo liters. About 80 percent of this amount flows during the three months of monsoon. Three dams built on the river, however, affects the flow of water during rainless seasons. The dams virtually stop the flow of water and very small amount of it manages to cross the dam. The river which is left almost without water is almost reduced to a big nallah affecting badly the life of fish and other water animals.

The water of the river Yamuna is also a big source of drinking water. In Delhi alone, as much as, 430 million gallons of water per day are drawn to meet its water requirement. Much of the water is also diverted into irrigation canals (the western and eastern canals). During the past 3-4 decades this water has been intensively used for agriculture.

Causes or factors responsible for pollution

River water pollution adversely alters the quality of water. It disturbs and destroys an ecological balance and creates health hazards.

Water gets polluted by the presence or addition of inorganic materials, organic substances and biological agents. These sources of water pollution can be classified into two groups viz.) Natural sources and II) Man made sources. Soil erosion, leaching of minerals from rocks, decaying organic matter, are the natural sources of water pollution. Sewage and water wastes from homes, commercial and industrial establishments, night soil and animal excreta and agricultural wastes are man made sources of water pollution. Large quantities of suspended solids and ammonical nitrogen, heavy metals, cyanide, oil and other substances are the additional sources which cause water pollution.

1) Domestic Sewage : Water pollution in the river Yamuna is almost negligible at its originating point. First source of its pollution starts when the sewage nullah falls into the river at Paunta Sahib, District Sirmour (Himachal Pradesh). The river also receives good amount of water pollutants through a number of sewage nallahs at Yamuna Nagar, Sonipat and other towns/cities in Haryana before it reaches India's capital-Delhi. In Delhi, the water of river Yamuna gets highly polluted, after the falling of 18 sewerage *nallahs* as it gets about 60 percent of the untreated domestic sewage. The river yamuna in fact, is constantly fed by the drains carrying domestic waste from its entering Delhi at Palla Village near Wazirpur to leaving at Okhla. According to a study of CPCB during 1982 & 1986, wastes from Delhi, Agra, Mathura and Allahabad contributed to most of the pollution of the river water with 1068, 71, 51, and 155 million litres of sewage, respectively.

2) Industrial Wastes: A recent report by CPCB, has named the Atlas Cycle Factory before Delhi accusing it of dumping its un-treated wastes into the river Yamuna. A number of other industries in the capital (Delhi) and other cities/towns are also held responsible for dumping their wastes in the river Yamuna. The Hindustan Insecticides Limited and Shri Ram Food and Fertilizers are the major factories in this context. Delhi's two thermal power plants at Indraprastha and Badarpur also contribute their share by storing their flyash in unlined pits where it is wetted

continuously.

3) Cremation of Dead Bodies : Like the river Ganga, the river Yamuna has also to take ashes of the dead and also who are cremated at its banks all along its course. Some communities beyond Delhi directly dispose the dead bodies into the river. Thousands of dead animals are also dumped into the river as the villagers find it an inexpensive way of disposing them.

4) Open Defecation : Due to lack of proper latrine facilities, more than 5 million slum dwellers use open drains for defecating-which run straight into the river, carrying all their filth. Recent studies conducted by the CPCB estimate that the Yamuna receives approximately 150 tonnes of organic matter, 150 tonnes of suspended solids and 300 tonnes of dissolved solids.

5) Surface Runoff : The pollution load in the river yamuna increases tremendously immediately after rain as surface runoff from fields and sites of the industries enter into the river.

6) Fertilizers and Pesticides Residues : In the surface, there is lot of fertilizers and pesticides residues. In the river Yamuna 19000 M of water containing residues of DDT derivatives from agriculture field are dumped daily.

Recent findings

The river Yamuna from Wazirabad to Okhla consisting of flood plains & marshy areas has become one of the most threatened riverine ecosystems of the world (Dasgupta, 2005).

A visit to the affected areas in and around Delhi on the river front shows it is more filthy than it was decade ago-i.e. when the Yamuna Action Plan was undertaken to clean up the river. While Yamuna Action Plan I is over & Yamuna Action Plan II is being implemented, the water still looks blacker than earlier & resembles with the colour of coal tar.

While Biological Oxygen Demand (BOD) level should not be more than 3 mgl, but it has gone upto 18 mgl. On the other hand, dissolved Oxygen level has come down to an alarming zero, the ideal level being 5 mgl.

Of the various tributaries responsible for polluting the river Ganga, Yamuna is perhaps the most contributor carrying the entire sewage flow of Delhi which has been estimated to the tune of 350 million litres everyday.

Hazards

Due to massive pollution of the river Yamuna, its water is not only unsafe for drinking purposes but it has no scope for sustaining any kind of aquatic wildlife. On 13th June, 2002 thousands of fish died due to heavy pollution in the river Yamuna near Agra (U.P.) In fact, there was lack of oxygen in the river water which was supported by revival of some of the dying fish after pouring fresh water on them.

Moreover, the river has also lost its free flowing capacity i.e. self cleaning properties. The degeneration of the river is becoming a major health hazard for the people resulting into diseases like malaria, tuberculosis, cholera, typhoid etc. Delhi city had to face its water supply during February, 17-20, 1998 due to pollution of ammonia in drinking water. About 1.8 mg ammonia was found in the water which was beyond the permissible limits. The BOD for Yamuna water at Delhi, Agra, Mathura and Allahabad was 73, 23, 13 and 36 tonnes. (BOD is the quantity of oxygen used by bacteria in consuming organic matter in a sample of waste water over a 5-day period at a temperature of 20 degree Celsius).

The Delhi's contribution to Yamuna in miseries could be gauged from the fact that number of *Escherichia coli*, an indicator of organisms, was about 75 (most probable number) 100^{-1}ml water at Wazirabad. But its count increased to stupendous i.e., 2,44,000,100^{-1}ml water at Okhla-4800 times higher than the safety standard of 50, 100^{-1}ml water

prescribed by the World Health Organisation.

Methods to control the pollution

One of the methods to control the rive water's pollution is to recharge the drains and to recycle sewage. Recycling consists of internal use of waste waters by the original user prior to discharging to a treatment system or disposing of it to the water system. The waste water treated or untreated is recovered and then recycled for repetitive use by the same user. Reclaimed water can be utilized for irrigating the crops and/or for cooling purposes in the industries.

The problem of domestic wastes can be solved by constructing one major drain downstream of the river especially near Nizammudin in Delhi with other drains emptying into it. This will facilitate easy and quick recycling of the wastes through a sewage treatment plant.

Researches in Leacester University UK have developed a method to clean water using chemicals. It has proved useful in areas where polluted river water poses serious risks. Chemicals like alluminum sulphate will effectively coagulate minute pollutants like sewage, permitting easy cleansing of water.

Use of crushed seed powder of *Moringa oleifera (soangna)*, a tropical/subtropical tree has also proved beneficial in cleansing the polluted water. When mixed with water, the powder produces positively charged protein in the solution which then interacts with the negative charges in the suspended organic and inorganic matters, viruses which are easily removed through settlement and filtration.

To prevent the entry of industrial wastes/effluents into the rivers and aquatic bodies, their recycling must be done. For this purpose, each industrial plant should be based on recycling operations. Recycling of industrial wastes will not only stop their entry into the natural water source but byproducts can also be extracted from these wastes.

Wherever possible waste water treatment methods must be followed. Out of the several technologies to treat waste water, the most commonly used and the cheapest one is aeration method in open air lagoons. In this process, the waste water is exposed to aerate and once the BOD comes down to manageable limits it is then discharged into the water body. This method is usually done by the distillers in discharging their spent wash.

Activated Sludge Process (ASP) based on the principle of aeration, can also be used in case of waste water treatment having more BOD values. In this method, waste water is continuously allowed to enter the aerated tanks, where it is supplied with the required necessary oxygen and the bacterial sludge is kept in suspension. The treated water is then let out after separating the bacterial sludge from it in a clarifier. This process is continued till it gets the required bacterial density.

Plants, trees and forests can control pollution by acting as natural filters. In fact, they are capable of absorbing a number of obnoxious gases emitted from the domestic/ sewage wastes or industrial wastes like CO_2, SO_2, H_2S etc.

- 39, Dhakki Sarjan, Jammu-180001

TIRTHA

One who, having forsaken the tirtha of the Self, merely visits the external tirthas is a person who having forsaken the invaluable jewel at hand goes in search of mere glass. (Sri Jabala Darshana Upnisad, 4.50)

One who has (God) here (in the heart), has Him there (in the tirthas) also. He who has Him not here, has Him not there. (Sri Ramakrishna

ELEVEN INSPIRING QUALITIES OF LEADERSHIP

To be a leader, first you must really WANT to. A great DESIRE is the key here. You must be really "hungry" for the goal and pursue it with great determination. With a strong DESIRE you will achieve the goal as long as you have the following personal leadership qualities:

1. Unwavering courage.
2. Self control.
3. Always keeping a sense of justice (and fairness) towards others.
4. Definiteness of decisions.
5. Leaders have a clear vision of the future they wish to CREATE. All their decisions are in alignment with their over-riding objectives and move them in this direction.
6. Definiteness of plans. A leader then works their plan by putting it into ACTION.
7. Leaders are BELIEVERS: Firstly in themselves and in the Universe's plan for their lives. They have a strong sense of destiny.
8. A pleasing personality. People will do anything to help for great inspiring leaders.
9. Willingness to assume full responsibility for one's decisions-no matter what may go wrong!
10. Leaders are PASSIONATE people, who live with great enthusiasm.
11. Great leaders have great INTEGRITY.

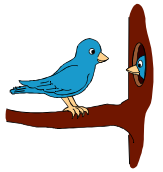

LOVE DWELLETH IN BIRDS TOO

❑ **C.D. Verma**

Recently I read a story about wonderful things in nature. It persuaded me to believe that here "exists a society, a fraternity, a bonding together in the wild." Animals live and move in herds. And birds of a feather flock together.

The story goes like this. A pair of hornbills, now 40-year old, has been together in the Delhi Zoo for almost 30 years. Last winter, the female broke one of her wings and fell sick. She was taken to the Zoo hospital for treatment. In her absence the male felt forlorn and forsaken. He brooded and abandoned food. After 20 days when the female returned to the cage, she had lost the power of locomotion and flight, because of old age and broken wing. Unable to move she confined herself in a corner of the cage.

Zoo authorities were seriously concerned as to how the male would respond to her sick female partner. But soon their apprehensions were belied. They were elated by a singular instance of bonding together. The male took upon himself to nurse and nurture his female partner. He would carry pieces of sliced fruits and eggs, with which hornbills are fed, to carefully feed her. And this has gone on for a year. The male has never been found wanting in his duties. He shows no signs of tiring and faltering.

Hornbills are monogamous. Their love-bond is life-long. According to ornithologists, hornbills make their nests in the tree trunks. When the female lays eggs, she seals her nest with mud, leaving just a small hole for the male to feed the chicks and the mother. Their love-bond reiterates that

love is the principle of existence and its only end.

This manifestation of the social marvel in nature reminded me of another happening. Last October I was at the Kolva Beach in Goa. The sea roared at a distance. The breakers rocking in the cradle of the deep were breaking against the cold gray pebbles and retreating. The evening was spread against the sky. It was an enchanting ambience. I was thrilled by nature's splendour. Close by, a small brook, only a trickle of sweet water, shimmered in the waning light of the sun.

Suddenly the scene changed into extraordinary, exceptionally rare phenomenon. A swarm of crows appeared in the sky. They alighted at the Kolva Beach. Then came more and more crows, thousands of them, only God knew how many. Such a large number of crows I had never seen in my life. The sea-roar was drowned in their caw-cawing. They took bath in the small brook, drank water out of it, and then gradually disappeared, one by one, into the nearby grove of coconut trees.

Perchance I espied a crow with a broken wing, just able to move and fly a little. He was helped and guided by a host of crows. As the light thickened, the block crows flew with their sick comrade, and slowly made wings to the rooky wood. It was a mystical sight in romantic setting. The scene amused me a great deal. It made me ruminate over the wonderful natural phenomenon, and its social and cosmic import.

Back home I saw the repeat of the some phenomenon at the time of sun set on November 7. I was going to Haridwar to have a dip in the holy waters of the Ganga on the auspicious day of the Kartik Purnima. Near Mayur Vihar in Dehli I saw crows and crows, flocking together towards the Yamuna river.

The scene reiterated my belief that there exists a

society, a certain parallelism in life, a great community sense, a social sense, a family sense, in nature. Thousands of crows One bird is as true as another. They have a great affiliation among themselves. A crow protects its family from any intruder. It becomes violent if any one climbs the tree and comes closer to its nest with young ones in it. If one crow is electrocuted, they caw-caw in unison to express their solidarity and remorse. And all this is true of hornbills and other birds too. Crows, that is birds, are unlike men, who refuse to believe that one man is as true as another, that one religion is as true as another. Men wrangle for religion, write for it, fight for it, die and kill for it, anything but live for it.

Birds have a great social and religious significance for human society. The crowing of skylark heralds the coming of the morning. The hooting of the owl is considered to be a bad omen. And similarly crow, because of its flight, is considered to be a messenger. The traditional house-holders interpret its caw-cawing as an advance information about the arrival of some loving guest. In the classical literature, it has mystic power, in particular the ability to foresee the future. Hence it played a special part in rites of divination. Even now the old ladies, immersed in the traditional rites and rituals, make daily offerings to crows in the name of dead ancestors and future happiness. ●

-181, Sector-19, Faridabad (Haryana)

A FOOL MAY BE KNOWN BY 5 THINGS:

- Anger without cause
- Inquiry without subject
- Mistaking foes for friends
- Change without progress
- Putting trust in a stranger

पाठक नामा

● बाहर से लौटने पर जुलाई से दिसम्बर 2007 की ज्ञानप्रभा पत्रिका, ज्ञान का भंडार प्राप्त हुई। इसके प्रकाशन पर बधाई। ज्ञानवर्धन करती यह पत्रिका जल्दी ही अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकेगी।

-सावित्री वार्ष्णेय, अलीगढ़

● भारत विकास परिषद् द्वारा अर्द्ध वार्षिक पत्रिका ''ज्ञान प्रभा'' का प्रकाशन वास्तव में एक बड़ा ही सराहनीय प्रयास है क्योंकि परिषद् की मुख्य पत्रिका ''नीति'' में समाचारों की बाहुल्यता के कारण सामाजिक, आध्यात्मिक व राजनीतिक आदि विषयों पर विद्वानों के लेख व रचनायें प्रकाशित करना सम्भव नहीं हो पा रहा था, अत: इस प्रकार की पत्रिका की परमावश्यकता थी।

मुझे यह पत्रिका, जिसकी सदैव प्रतीक्षा रहती है, नियमित रूप से मिल रही है तथा इनमें प्रकाशित विद्वानों के लेखों व रचनाओं का अध्ययन मैं गहनता से करता हूँ। अब तक के ज्ञान प्रभा में प्रकाशित लेख बड़े ही प्रेरणादायक शिक्षात्मक एवं उच्चकोटि के सूचनादायक रहे हैं। समान नागरिक संहिता अंक तो बड़ा ही आवश्यक था। इससे इस प्रकरण से सम्बन्धित भ्रान्तियों का निराकरण सम्भव हो सका होगा ऐसा मेरा विश्वास है। इस अंक का मुस्लिम वर्ग के बन्धुओं ने भी स्वागत किया है।

-आर. एस. श्रीवास्तव, कानपुर

● I am getting Gyan Prabha regularly. Its get-up is beautiful and the selection of articles is very good. It would be difficult to find bilingual magazine carrying so well researched articles on such a variety of topics. I am not very proficient in Hindi and so the English articles provide me a world view.

But I shall like to mention one thing. Some of the articles are quite lengthy and tedious too. So, it will be better to give a summary of the main ideas in the middle or at the end as is done by many journals. It will make the matter more reader friendly. **- M.M. Prabhakar,** Inderpuri, Delhi

CUT FROM HERE

CUT FROM HERE

SUBSCRIPTION FORM

GYAN PRABHA (Quarterly)

ज्ञान प्रभा

(त्रैमासिक)

I would like to subscribe for GYAN PRABHA.

(Please Tick Appropriate Box)

Subscription	*One Year*	*2 years*	*Life Membership*
	Rs. 100/- ☐	*Rs. 200/-* ☐	*Rs. 1500/-* ☐

(Please Write in Block Letters)

NAME : MR./MS._____

ADDRESS : _____

CITY _____ STATE _____ PIN ☐☐☐☐☐☐

TEL. : _____

DATE : _____ SIGNATURE_____

My Cheque/Draft No._____ dated_____

for Rs._____ drawn on _____

_____(specify bank) favouring

Bharat Vikas Parishad, Delhi is enclosed herewith.

Please send this coupon along with your payment to

Bharat Vikas Parishad

Bharat Vikas Bhawan, Behind Power House, Pitampura, Delhi-110088

Tel. : 011-27313051, 011-27316049 Fax : 011-27314515

सदस्यता फ़ार्म

मैं ज्ञान प्रभा का ग्राहक बनना चाहता हूँ :

❑ एक वर्ष रु. 100/-

❑ दो वर्ष रु. 200/-

❑ आजीवन सदस्य रु. 1500/-

GYAN PRABHA
(Quarterly)
ज्ञान प्रभा
(त्रैमासिक)

स्पष्ट शब्दों में लिखें :-

नाम.....

पता.....

नगर.....पिन कोड ☐☐☐☐☐☐ राज्य.....

टेलीफोन नं. ..... मोबाईल .....

तिथि ..... हस्ताक्षर .....

चैक नं./ ड्राफ्ट संख्या.....दिनांक.....रु .....का संलग्न है

(ड्राफ्ट/चैक भारत विकास परिषद दिल्ली को देय होगा)

(भुगतान के साथ इस कूपन को भी भेजें)

भारत विकास परिषद्
भारत विकास भवन (पावर हाउस के पीछे)
पीतमपुरा, दिल्ली- 110034
फोन नं.- 011-27313051-27316049